

સાપ્તાહિક

માર્ચ ૧૯૭૬



સાપ્તાહિક

વેતના



મહાલેખાકાર (લેખા ફલ હકદારી) મ. લિહાર, વડના

चेतनी परिवार



बैठे हुए हैं बाएँ से संरक्षक एवं परामर्शी :

श्री सतीश चन्द्र राउत, परामर्शी, श्री अरूण कुमार सिंह, संरक्षक, श्री खालिद बिन जमाल, परामर्शी

खड़े हैं बाएँ से परामर्शी एवं सम्पादक :

श्री ललन प्रसाद श्रीवास्तव, परामर्शी, डॉ० जितेन्द्र कुमार, प्रधान सम्पादक
श्री नरेन्द्र कुमार सिंह 'नाहर', सम्पादक एवं श्री राजेन्द्र प्रसाद मिश्र, परामर्शी ।

मुख्य आवरण-पृष्ठ परिचय

शेरशाह सूरी का मकबरा : पटना से 152 किमी की दूरी पर स्थित सासाराम नगर में शेरशाह सूरी का मकबरा एक महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल है । यह मकबरा अफगान वास्तुविद् कला का एक अनुपम नमूना है जो, एक विशाल सरोवर के बीच स्थित है । सासाराम नगर ग्रैंड-ट्रंक रोड पर अवस्थित है जिसका निर्माण भी शेरशाह सूरी ने अपने शासनकाल में करवाया था ।



सत्यमेव जयते

चेतना

अर्द्धवार्षिक हिन्दी पत्रिका
(एकादश अंक)

महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी)-II, बिहार, पटना का कार्यालय
महालेखाकार भवन
वीरचन्द पटेल पथ, पटना-800 001

स्वत्वाधिकार	:	महालेखाकार (ले.एवं ह.)-II, बिहार, पटना
प्रकाशन	:	कार्यालय पत्रिका 'चेतना'
प्रकाशक	:	महालेखाकार (ले.एवं.ह.)-II, बिहार, पटना का कार्यालय, पटना-800 001
अंक	:	एकादश अंक मार्च, 1999
मूल्य	:	राजभाषा हिन्दी की सतत सेवा
मुद्रक	:	कोरल कम्प्यूटर प्रिन्ट 42, फ्रेजर रोड, पटना-800 001, दूरभाष : 231708
रेखांकन	:	अंजनी कुमार

भारत वर्ष की राजभाषा चाहे जो हो और जैसी भी हो, पर इतना निश्चित है कि भारतवर्ष की केन्द्रीय भाषा हिन्दी है। लगभग आधा भारतवर्ष उसे अपनी साहित्यिक भाषा मानता है, साहित्यिक भाषा अर्थात् उसके हृदय और मस्तिष्क की भूख मिटाने वाली, करोड़ों की आशा-आकांक्षा, अनुराग-विराग, रूदन-हास्य की भाषा। उसमें साहित्य लिखने का अर्थ है करोड़ों के मानसिक स्तर को ऊँचा करना, करोड़ों मनुष्यों को मनुष्य के सुख-दुःख के प्रति संवेदनशील बनाना, करोड़ों को अज्ञान, मोह और कुसंस्कार से मुक्त करना।

—डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

चेतना परिवार

सरंक्षक :

श्री अरूण कुमार सिंह
महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी)-II, बिहार, पटना

प्रकाशन परामर्शदातृ समिति :

श्री सतीश चन्द्र राउत
वरिष्ठ उपमहालेखाकार, बिहार, पटना

श्री खालिद बिन जमाल
उपमहालेखाकार, बिहार, पटना

श्री राजेन्द्र प्रसाद मिश्र
वरिष्ठ लेखा अधिकारी, बिहार, पटना

श्री ललन प्रसाद श्रीवास्तव
वरिष्ठ लेखा अधिकारी, बिहार, पटना

सम्पादक मण्डल :

प्रधान सम्पादक :

डॉ. जितेन्द्र कुमार
अनुभाग अधिकारी, हिन्दी कक्ष

सम्पादक :

श्री नरेन्द्र कुमार सिंह 'नाहर'
वरिष्ठ लेखाकार, हिन्दी कक्ष

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	रचनाएँ	रचयिता	पृष्ठ सं.
1.	चेतना परिवार			
2.	अनुक्रमणिका			3
3.	महालेखाकार का संदेश			4
4.	वरिष्ठ उपमहालेखाकार का संदेश			5
5.	उपमहालेखाकार का संदेश			6
6.	सम्पादकीय			6
7.	आपके पत्र			7
8.	विदेश यात्रा के कुछ अनुभव	यात्रा-वृत्तांत	श्री अरूण कुमार सिंह	8-9
9.	आज का बेचारा आदमी	कविता	श्री अरूण कुमार सिंह	10-16
10.	एक बार फिर	कहानी	श्री ललन प्रसाद श्रीवास्तव	17
11.	हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास	निबन्ध	श्री हरेराम प्रधान	18-23
12.	मंदिर की शादी	संस्मरण	श्री राम सुभग राम	24-32
13.	गुलामी की दस्तक	कविता	श्री राम प्रताप सिंह 'मधुप'	33-34
14.	देख सका न ताजमहल	कविता	श्री अखिलेश्वर ना० लाल दास	35
15.	निराला काव्य-प्रकृति की रंगस्थली	लेख	डॉ. जितेन्द्र कुमार	36-37
16.	योग-एक अनुभूति	लेख	श्री ओम प्रकाश	38-39
17.	दुर्भाग्य	कहानी	श्री नरेन्द्र कुमार सिंह 'नाहर'	40-41
18.	पहचान	कविता	श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह	42
19.	वतन की पुकार	कविता	श्री आर०पी० चक्रवर्ती	42
20.	क्या है ?	कविता	स्व. रामफल प्रसाद	43
21.	गुलामी आजादी और आज के लोग	कविता	सुश्री सुचिता कुमारी	43
22.	बाबुल की गलियाँ	कविता	श्री शशिभूषण प्रसाद	44
23.	भारतीय सांस्कृतिक उन्नयन एवं उद्भव तथा विश्व दर्शन	लेख	डॉ. विजय कुमार सिन्हा	45-46
24.	खेलों का बादशाह : शतरंज	लेख	श्री अमरेन्द्र कुमार पांडेय	47-48
25.	अपेक्षा	निबन्ध	श्री वंशीधर मिश्र	49
26.	दोष	लेख	सुश्री लीना राउत	50
27.	राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए वर्ष 1998-99 के छः महत्वपूर्ण लक्ष्य			51-52

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से महालेखाकार कार्यालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है। ये रचनाकारों के निजी विचार हैं। साथ ही रचना की मौलिकता के लिए रचनाकार स्वयं जिम्मेवार हैं।

- प्रधान सम्पादक



सत्यमेव जयते

महालेखाकार (ले. एवं ह.)-II, बिहार, पटना का

संदेश

हिन्दी एक सरल, सशक्त एवं जीवंत भाषा है। इसका क्षेत्र व्यापक है। इसकी व्यापकता के कारण ही इसे हमारे संविधान में भारत की 'राजभाषा' का गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है। संविधान के प्रावधानों को सक्रियता से कार्यान्वित करना हम सभी का नैतिक कर्तव्य है। इसमें हिन्दी भाषी जनता का खासकर सरकारी कर्मचारियों का महत्वपूर्ण दायित्व के निर्वाह हेतु सरकारी कामकाज में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग करना अत्यावश्यक है।

हिन्दी को सरकारी कामकाज में उचित स्थान दिलाने की दिशा और दशा में आजादी के बाद के दशकों में काफी विकास हुआ है। हमारी पत्रिका 'चेतना' इसी उद्देश्य को आगे बढ़ाने का कार्य करती है।

मुझे इस बात की बहुत खुशी है कि पत्रिका को आगे बढ़ाने के लिए हमारे कर्मचारियों ने हिन्दी में लिखने का सराहनीय प्रयास किया है। इसके लिए मैं उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ। उन्हीं के सफल प्रयास का नतीजा है कि पत्रिका का यह अंक राष्ट्रभाषा हिन्दी को समर्पित ग्यारहवाँ पुष्प है। पत्रिका के समस्त रचनाकारों ने इसे भावप्रद, ज्ञानवर्द्धक एवं रूचिकर बनाने का पूरा प्रयास किया है। अतः पत्रिका के रचनाकारों और सम्पादक-मंडल को बहुत-बहुत धन्यवाद।

कार्यालय में उपलब्ध सृजनात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति को बढ़ावा देकर हिन्दी-प्रयोग के विकास हेतु एक सक्रिय माध्यम बनने के लिए 'चेतना' को मेरी विपुल शुभकामनाएँ।

अरूण कुमार सिंह

महालेखाकार (ले. एवं ह.)-II, बिहार
पटना



सत्यमेव जयते

वरिष्ठ उपमहालेखाकार (जी.ई. एवं निधि), बिहार, पटना का संदेश

अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि कार्यालय में राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'चेतना' का ग्यारहवाँ अंक प्रकाशित होने जा रहा है।

आशा करता हूँ कि यह पत्रिका पाठकों का ध्यान 'राजभाषा हिन्दी' की ओर आकृष्ट करके उनके मन-प्राण में हिन्दी के प्रति जागृति पैदा करेगी तथा उसके विकास के लिए उन्हें प्रेरित करेगी। पत्रिका के समस्त रचनाकारों एवं सम्पादक-मंडल को उनके सार्थक प्रयास हेतु हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक कामना करता हूँ

सतीश चन्द्र राउत

वरिष्ठ उपमहालेखाकार (जी.ई. एवं निधि), पटना



सत्यमेव जयते

उपमहालेखाकार (प्रशासन एवं पेंशन), बिहार, पटना का संदेश

मुझे इस बात की बेहद खुशी है कि इस कार्यालय से छमाही हिन्दी पत्रिका 'चेतना' का ग्यारहवाँ अंक जल्द ही प्रकाशित होने जा रहा है।

उम्मीद है, पत्रिका का यह अंक हमारे अजीज पाठकों को मनपसन्द लगेगा और वे इसकी रचनाओं को सराहेंगे। इतना ही नहीं, यह पत्रिका सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने में भी मददगार साबित होगी।

बेहतरीन रचनाओं के लिए समस्त रचनाकारों को और सही कोशिश के लिए सम्पादक मंडल को दिली शुक्रिया अदा करता हूँ।

पत्रिका के अहिर्निश विकास हेतु हार्दिक शुभकामनाएँ।

खालिद बिन जमाल

उपमहालेखकार (प्र. एवं पेंशन), बिहार, पटना

सम्पादकीय

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के महापुरुषों, राजनीतिज्ञों, लेखकों, कवियों, कलाकारों आदि ने हिन्दी के चहुँमुखी विकास के लिए पूरा बल दिया। देववाणी संस्कृत की ज्येष्ठ सुता हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा के रूप में अपना ली गई। हिन्दी को यह सम्मान मिलना स्वाभाविक है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है :-

“हिन्दी का उद्देश्य यही है, भारत एक रहे अविभान्य,
यों तो रूस और अमरीका, जितना है उसका जन रान्य।
बिना राष्ट्रभाषा स्वराष्ट्र की, गिरा आप गुंगी असमर्थ,
एक भारती बिना हमारी भारतीयता का क्या अर्थ।”

हिन्दी अपने गुणों के कारण सबों की प्यारी है। इसकी दिनानुदिन प्रगति के लिए प्रयास जारी है। हमारे कार्यालय की हिन्दी पत्रिका ‘चेतना’ राजभाषा हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार हेतु प्रकाशित की जाती है। पत्रिका के ग्यारहवें अंक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। हम कहाँ तक सफल हो पाए हैं इसका निर्णय सुधी पाठक ही कर सकते हैं। ‘चेतना’ पत्रिका इस कार्यालय की राजभाषा के उद्यान का एक आकर्षक ‘गुलदस्ता’ है जिसमें सुन्दर फूलों की तरह मनमोहक रचनाएँ संजो कर रखी गई हैं। हिन्दी के वार्षिक कार्यक्रमों को पूर्णरूपेण कार्यान्वित कराने में यह पत्रिका कृतसंकल्प है। पत्रिका को रोचक, ज्ञानवर्द्धक एवं पठनीय बनाने के लिए हम सतत्प्रयत्नशील हैं।

इस पत्रिका का सौभाग्य रहा है कि इस कार्यालय में जितने भी महालेखाकार अबतक आए हैं वे सभी हिन्दी के अनन्य प्रेमी रहे हैं। वर्तमान महालेखाकार श्री अरुण कुमार सिंह जो पत्रिका के संरक्षक भी हैं, हिन्दी के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं। उन्होंने हिन्दी के सर्वतोमुखी विकास के लिए हर संभव कदम उठाए हैं। श्री सतीशचन्द्र राउत, वरिष्ठ उप महालेखाकार एवं श्री खालिद बिन जमाल, उप महालेखाकार भी हिन्दी-प्रेमी हैं। हिन्दी के प्रति उन दोनों की पूर्ण आसक्ति है। महालेखाकार महोदय, वरिष्ठ उप महालेखाकार महोदय एवं उप महालेखाकार महोदय के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। मैं इस पत्रिका के संपादक श्री नरेन्द्र कुमार सिंह ‘नाहर’ के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सदा योगदान दिया है। पत्रिका के समस्त रचनाकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने अपनी अच्छी रचनाओं से पत्रिका को सशक्त, ज्ञानवर्द्धक एवं चित्ताकर्षक बनाया है। जी.डी. अनुभाग के श्री अजित कुमार सिन्हा को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने पत्रिका के मुद्रण में एवं पत्रिका के कलेवर को सुन्दर बनाने में पूर्ण सहयोग दिया। प्रकाशन परामर्शदातृ समिति के सदस्यों के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ जिनके बहुमूल्य सुझावों से पत्रिका हृदयहारिणी हुई है। अंत में सहृदय एवं विज्ञ-पाठकों से साग्रह अनुरोध है कि वे अपने बहुमूल्य सुझाव भेजकर हमें अनुगृहीत करें।

जय भारत, जय हिन्दी।

डॉ. जितेन्द्र कुमार
प्रधान सम्पादक

पत्रिका का आवरण एवं छाया-चित्रों ने इसे और भी सुन्दर बना दिया है ।
पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति की शुभकामना के साथ ।

प्रभाकर जोशी
हिन्दी अधिकारी
महालेखाकार (ले.प.), राजस्थान जयपुर-5 का कार्यालय

6.11.98

 विना 'जेवना' प्राप्त हुई। धन्यवाद।

वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी (राजभाषा)
महालेखाकार (ले.प.)-I, महाराष्ट्र का कार्यालय

मुम्बई,

11.11.98

[illegible]

पत्रिका में संकलित सभी सामग्री उत्तम, रोचक एवं ज्ञानवर्धक हैं। राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में पत्रिका का भविष्य उज्ज्वल हो।

वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी,
अभिलेख / हिन्दी कक्ष

कलकत्ता
10.11.98

वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी,
अभिलेख / हिन्दी कक्ष
महालेखाकार (ले.प.)-II, पश्चिम
बंगाल, कलकत्ता का कार्यालय

एक बार समस्त पत्रिका के अनुशीलनार्थ व्यग्र हो उठता है ।

मुख्य पृष्ठ के सदृश अन्दर की सामग्री भी अतिश्रेष्ठ एवं पठनीय तथा संग्रहणीय बन पड़ी है। प्रत्येक रचना उपयोगी एवं राजभाषा के ज्ञान की अभिवृद्धि में सहायक है। भाषा सरल एवं रचनाकार के हृदयस्थ उद्गारों को प्रकट करने में सक्षम है। शैली प्रवाहमयी है।

सम्पादक-मंडल ने रचनाओं के सम्पादन एवं क्रमांकन में स्तुत्य प्रयास किया है जो साधुवाद का पात्र है।

नई दिल्ली
17.11.98

वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी (राजभाषा)
महानिदेशक (ले.प.), केन्द्रीय राजस्व
नई दिल्ली-2 का कार्यालय

अर्द्धवार्षिक हिन्दी पत्रिका 'चेतना' के दशम अंक की प्रति प्राप्त हुई, धन्यवाद।

पत्रिका में प्रकाशित लेख, निबन्ध, कहानी, लघु कथा एवं लतीफा अति रोचक एवं पठनीय हैं। पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए सम्पादक-मंडल को बधाई एवं पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए शुभकामनाएँ।

सिक्किम, गंगटोक,
11.11.98

वरिष्ठ लेखा अधिकारी (प्रशासन)

व. उपमहालेखाकार (ले. एवं ह.)

सिक्किम, गंगटोक का कार्यालय

आपके कार्यालय की अर्हतापूर्ण निम्नी है

आपके कार्यालय की अर्द्धवार्षिक हिन्दी पत्रिका 'चेतना' प्राप्त हुई। एतदर्थ धन्यवाद। पत्रिका का आवरण-पृष्ठ बहुत ही आकर्षक है। इसमें प्रकाशित सभी रचनाएँ रोचक, ज्ञानवर्धक एवं उत्कृष्ट हैं। श्री उमेश चौधरी का निबन्ध 'भारतीय नारियों की सामाजिक दशा' एवं श्री अवधेश कुमार सिन्हा का लेख 'स्वतंत्र भारत के पचास वर्ष और हिन्दी' बहुत ही ज्ञानवर्धक एवं पठनीय हैं। आशा है कि भविष्य में भी राजभाषा प्रचार-प्रसार में यह पत्रिका अनवरत रूप से हिन्दी साहित्य प्रेमियों की भावनाओं को लेकर अग्रणी रहेगी तथा हिन्दी भाषा के उत्थान में सहायक बनी रहेगी।

पत्रिका के सफल सम्पादन हेतु सम्पादक मंडल बधाई के पात्र हैं। पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

इलाहाबाद
12.11.98

सहायक लेखा परीक्षा अधिकारी (हिन्दी)

महालेखाकार (ले.प.)-I, उत्तर प्रदेश

इलाहाबाद का कार्यालय

आपके कार्यालय का पता है : _____

आपके कार्यालय द्वारा प्रकाशित हिन्दी पत्रिका 'चेतना' का दशम अंक मिला, धन्यवाद।
श्री अरूण कुमार सिंह का लेख 16

श्री अरूण कुमार सिंह का लेख 'बिहार का पिछड़ापन-गिरती वित्तीय दशा का प्रतिबिम्ब' यथार्थ स्थिति पर आधारित कटु तथ्यों से अवगत कराता है। श्री उमेश चौधरी का 'भारतीय नारी की सामाजिक दशा' ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में नारी की दशा व दिशा-दोनों का समझने में सहायक है। बिहार की संस्कृति से जुड़े दोनों आलेख प्रभावशाली हैं। श्री नरेन्द्र कुमार सिंह 'नाहर' श्री ओम प्रकाश, श्री राम बाबू राम की काव्य रचनाएँ पसन्द आईं।

पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति की शुभकामनाएँ ।

संतोष पुष्करणा

प्रवर लेखा अधिकारी

महालेखाकार (ले.एवं ह.), पंजाब

चण्डीगढ़-5 का कार्यालय

चण्डीगढ़
23.11.98

अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'चेतना' के दशम अंक की एक प्रति प्राप्त हुई, धन्यवाद ।

पत्रिका की समस्त रचनाएँ सुबोध और उच्चकोटि की हैं तथा राजभाषा हिन्दी को प्रगति-पथ की ओर अग्रसर करती प्रतीत होती है ।

मैं आशा करता हूँ कि पत्रिका का आगामी अंक और भी रोचक होगा। पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति की कामना के साथ।

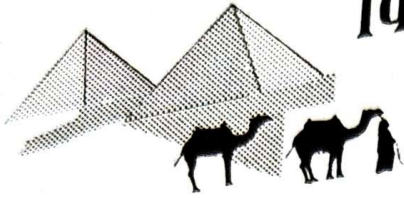
मद्रास

सहायक महालेखाकार (प्र.)

महालेखाकार (ले.प.)-I, तमिलनाडु

एवं पांडिचेरी, मद्रास का कार्यालय

11.1.99



विदेश यात्रा के कुछ अनुभव

श्री अरूण कुमार सिंह

महालेखाकार (ले.एवं.ह.)-II, बिहार, पटना



दूतावास लेखापरीक्षा के सिलसिले में मुझे मध्य एशिया के चार देशों - ईरान, सिरिया, लेबनान तथा बहरीन की यात्रा का अवसर मिला। इस भ्रमण के दौरान उन मुल्कों के बारे में काफी-कुछ जानकारी हासिल हुई। मैं अपने अनुभवों का एक छोटा वृत्तान्त प्रस्तुत कर रहा हूँ।

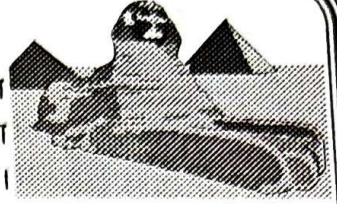
ईरान : ईरान मध्य एशिया का आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से सबसे समृद्ध राष्ट्र है जिसका इतिहास भारत वर्ष की तरह ही हजारों वर्ष पुराना है। इसकी राजधानी, तेहरान, में हमें दो सप्ताह रहने का मौका मिला।

तेहरान महानगर में ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें सड़क के दोनों ओर खड़ी हैं। शहर बहुत साफ-सुथरा है और दुकानें आधुनिक और आकर्षक हैं। वहाँ दो बड़े-बड़े सुपर-बाजार हैं जहाँ आवश्यकता की हर सामग्री उपलब्ध है। सड़कों पर अक्सर गाड़ियों का लम्बा तांता लगा होता है और कार्यालय खुलने तथा बंद होते वक्त तो ऐसा लगता है मानो गाड़ियों का सैलाब आ गया हो। मैंने उतनी गाड़ियाँ एक साथ दिल्ली शहर में भी नहीं देखीं। वहाँ बसें कम चलती हैं, लगभग हर शहरी एक गाड़ी का मालिक होता है। पेट्रोल के बहुत सस्ता होने की वजह से गाड़ी रखना और चलाना बहुत आसान हो गया है। वहाँ की सड़कों पर आपको दुनिया की हर मशहूर गाड़ी का मॉडल मिल जायेगा। ईरान में दो-तीन तरह की गाड़ियाँ बनती भी हैं पर ज्यादातर गाड़ियाँ आयातित हैं। वहाँ गाड़ियों के इस स्वच्छंद इस्तेमाल को देखकर मन में यह डर समा जाता है कि इससे खनिज तेल का भंडार जल्द ही समाप्त हो जायेगा और उर्जा-संकट गहरा जायेगा। पर ईरान में तेल का भंडार इतना बड़ा है कि इस खतरे के बारे में किसी को चिंता नहीं है।

तेहरान शहर में रजा पेहलवी, जो इस्लामी क्रांति के पहले वहाँ के शासक थे, का भव्य महल है। तख्ते-ताउस सोने का बना हुआ मयूर सिंहासन जिसे भारतवर्ष से ईरान नादिर शाह लूट कर ले गया था - बैंक में सुरक्षित है, पर्यटकों के लिये विशेष आकर्षण का केन्द्र है।

हर महानगर की तरह वहाँ भी लोग काफी व्यस्त होते हैं और सबेरे-सबेरे अपने काम पर निकल पड़ते हैं। पर शुक्रवार को छुट्टी मनाते हैं। छुट्टी के दिन वे परिवार के साथ गाड़ियों में शहर से दूर किसी बाग या मैदान में पहुँच जाते हैं एवं पिकनिक मनाते हैं। वहीं कभी-कभी वे आग जलाकर गोस्त भी भुनते हैं। एक बार मैंने तीन गाड़ियों को एक मैदान में "यू" आकृति में जोड़कर कुछ परिवारों को पिकनिक का आनंद लेते देखा है। छुट्टियों के दिन आपको सभी पार्कों में लोगों, खासकर बच्चों की भीड़ दिखेगी। नौरोज के अवसर पर मार्च महीने में तो लगता है मानो सारा तेहरान खाली हो गया हो। अधिकतर नागरिक 15 दिनों तक छुट्टियाँ मनाने गांवों एवं पहाड़ों पर चले जाते हैं।

शिराज जिसे प्राचीन काल में ईरान का राजनैतिक-सांस्कृतिक केन्द्र माना जाता था, महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अवशेषों से भरा-पड़ा है। आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व वहाँ एक्यूमेनियन साम्राज्य इतना



शक्तिशाली था कि वह यूनानियों से भी टक्कर लेता था। उसके दो सम्राट कुसा तथा दारियस के समय में यह साम्राज्य अपनी शक्ति के शिखर पर था जिसका प्रमाण शिराज शहर से लगभग 50 कि.मी. दूर परसिपोलिस में मिलता है। परसिपोलिस को दारियस ने अपनी राजधानी बनायी। तख्ते जमशेद नाम से मशहूर राजमहल का निर्माण ऊँचे-ऊँचे पत्थर के खंभों के ऊपर काठ की छत डालकर किया गया था। ये खंभे पत्थर के तीन बड़े-बड़े बेलनाकार टुकड़ों को एक के ऊपर एक बिना सुर्खी से जोड़कर बनाया गया था। यहाँ वास्तुकला एवं मूर्तिकला का बेहतरीन नमूना मिलता है। उपलब्ध मूर्तियों तथा दीवार पर की गयी नक्काशी से उस साम्राज्य की विशालता का आभास मिलता है। इस राज प्रासाद के पीछे एक पहाड़ी थी जिसमें गुफा में एक सम्राट का कब्रगाह बना हुआ था।

शिराज शहर में सूफी मत के अनुयायी महान कवि हाफिज तथा शेख सादी के मकबरे हैं। वहाँ शाहे-चिराग नाम से मशहूर प्राचीन मस्जिद है जहाँ दूर-दूर से तीर्थयात्री आकर शीश नवाते हैं। उस शहर में कई सुंदर बाग हैं जिनमें बागे इराम प्रसिद्ध है। वहाँ का विश्वविद्यालय मशहूर है जहाँ ईरान के दूर-दराज के प्रदेशों से भी विद्यार्थी आकर उच्च शिक्षा ग्रहण करते हैं। उस विश्वविद्यालय में कुछ वर्षों पहले कई भारतीय प्राध्यापक शिक्षण का काम करते थे, आज कल एक-दो ही बच गये हैं।

तेहरान से लगभग 350 कि.मी. दूरी पर बसा इसफहान शहर का इतिहास भी काफी रोचक है। शायद इस शहर की स्थापना एकिमेनियन युग में हुई थी। सफाविद साम्राज्य की राजधानी इसफहान को बनाई गयी। यह शहर दर्शनीय स्थलों से भरा पड़ा है। जामें मस्जिद उत्तर-इस्लामी वास्तुकला का अनूठा उदाहरण है। इमाम चौक जिसे सफाविद युग में बनाया गया था इस शहर का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है जहाँ लोग इबादत करने, खरीद-फरोख्त करने या यँ ही घूमने-फिरने आते हैं। यहाँ चौक के चारों तरफ पत्थर की बनी हुई सैकड़ों दुकानें कालीन, रंग-बिरंगी कशीदाकारी, महीन चित्रकारी, "इनले" तथा एनामेल शिल्प, मोजैक, चीनी मिट्टी के सामान और हस्तकलाओं से दर्शनार्थियों को लुभाती है। इसी चौक पर स्थित लौटफोल्ला तथा इमाम मस्जिद और अली गाफू (एक छः मंजिला भवन जिसका व्यवहार राजदूतों के स्वागत कक्ष के रूप में किया जाता था) इस्लामी वास्तु-शिल्प के बेहतरीन नमूने हैं।

ईरान में 1979 के इस्लामी क्रांति के पश्चात् काफी राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक उथल-पुथल हुई। अभी भी यह कहना कठिन है कि स्थिरता की स्थिति पूरी तरह से बहाल हो गयी है। आये दिन उदारवादी नागरिकों, पत्रकारों एवं लेखकों पर आक्रमण, प्रजातांत्रिक स्वतंत्रता की मांग करने वाले राजनीतिज्ञों की भर्त्सना तथा धार्मिक सहिष्णुता दर्शाने वाले मुल्लाओं का बहिष्कार कट्टरपंथियों के वर्चस्व का परिचायक है। पर पिछले दो वर्षों में स्थिति में काफी सुधार हुआ है जबसे मोहम्मद खातमी, जो एक उदारवादी मुल्ला है, राष्ट्रपति पद पर भारी बहुमत से चुने गये। स्त्रियों के पहनने-ओढ़ने तथा घूमने-फिरने पर नियंत्रण अब पहले से ढीला कर दिया गया



है। प्रेस को पहले से अधिक स्वतंत्रता दी गयी है। अब राजनीतिज्ञ, पत्रकार तथा लेखक अधिक निर्भीकतापूर्वक अपनी बात कह सकते हैं। अभी हाल ही में सम्पन्न कांसिल चुनावों में बड़ी संख्या में राष्ट्रपति के समर्थक, जो ज्यादा स्वतंत्रता बहाल करना चाहते हैं, चुने गये हैं। ये सारी बातें आने वाले दिनों में ईरान में ज्यादा प्रजातांत्रिक और लोकप्रिय सरकार के गठन की पूर्व-सूचना है।

सिरिया : मध्य एशिया में सिरिया उन देशों में एक है जिसे इजराइल का आक्रामक रूख झेलना पड़ रहा है तथा जिसका एक हिस्सा उस देश के कब्जे में है। मुझे "गोलान हाइट्स" जो इजराइल के अधिकार में हैं, जाने का मौका मिला। वहाँ अभी भी कुनेत्रा शहर, जिसे इजराइली सेना ने 1973 के युद्ध में बिल्कुल ध्वस्त कर दिया था, उसी अवस्था में सुरक्षित देखा जा सकता है। यह भुतहा शहर विश्व के उन गिने-चुने स्थानों में होगा जहाँ युद्ध की विभीषिका का उदाहरण अपने सबसे भयानक रूप में देखा जा सकता है। वहाँ आज भी गोलियों से छलनी गोलान अस्पताल मनुष्य के विवेकहीन और विनाशकारी करतूतों के प्रतीक के रूप में खड़ा है। भग्नावस्था में गिरिजाघर तथा मस्जिद को देखकर यह लगता है कि मानव के सबसे पावन स्थल भी युद्ध रूपी तूफान के थपेड़ों से नहीं बच सकते।

दमिश्क शहर, जहाँ मैं 14 दिनों तक अपने कार्य के सिलसिले में था, प्राचीन और नवीन सभ्यताओं का एक सुंदर सम्मिश्रण है। सिरिया प्राचीन काल में पूर्व एवं पश्चिम यानी एशिया एवं यूरोप के बीच सेतु था। पूर्वी एवं पश्चिमी दोनों संस्कृतियों के प्रभाव से इस क्षेत्र में एक अनूठी साझा सभ्यता का उदय हुआ। उस सभ्यता का नमूना हमें एलेप्पो, हम्स, हमा आदि शहरों में मिलता है। जहाँ एक ओर वहाँ प्राचीनतम मस्जिद एवं बाजार हैं वही दूसरी ओर आधुनिक उपस्करों से सुसज्जित होटलों तथा रिहाइशी मकानों की गगनचुम्बी अट्टालिकायें हैं। सड़कें आधुनिक हैं जिन पर दुनिया भर के नये-नये मॉडल के वाहन दौड़ते रहते हैं।

सबसे पहले हमलोग दमिश्क शहर के कुछ दर्शनीय स्थान देखने निकले। इनमें कुछ मस्जिद, गिरिजाघर एवं अजायबघर महत्वपूर्ण हैं। ओम्मायद मस्जिद बड़ा विशाल और भव्य है। इस मस्जिद में सुन्नी और शिया अनुयायियों के लिये अलग-अलग प्रार्थना हाल बने हुये हैं। यह मस्जिद तीर्थयात्रियों से बराबर भरा रहता है। शिया भक्तों के लिये यह विशेष महत्व का तीर्थस्थान इसलिये है कि यह हुसैन साहब, जो कर्बला के मैदान में ओम्मायदों के खिलाफ लड़ते हुये शहीद हुये थे, का कटा हुआ सर सुरक्षित है। दमिश्क शहर में ही मोहम्मद साहब की पोती सायेदा जैनब का कब्र भी है जो एक सुनहरे गुम्बज वाली भव्य मस्जिद में स्थित है। उस मस्जिद में भी बड़ी संख्या में तीर्थयात्री दुनिया भर से आकर अपना श्रद्धा सुमन चढ़ाते हैं।

हम्स शहर मुसलमानों का महत्वपूर्ण तीर्थस्थान है जहाँ खालिद इब्न अल वलीद के मकबरे पर एक भव्य मस्जिद दर्शनीय है। बोसरा शहर का रोमन एम्फी थियेटर काफी बड़ा है जो रोम में स्थित कोलोजियम की याद दिलाता है। हमलोग हमा शहर पहुँचे जहाँ हममे मध्ययुगीन पनचक्की देखी। सिर्फ

हवा के झोंकों से उसके पंखों पर इतना दबाव बन जाता है कि वे तेजी से घूमने लगते हैं जिससे नदी का पानी घिरनी पर लगे बाल्टियों के सहारे बीस फिट की ऊँचाई पर अवस्थित नहर में आ गिरता है।



एलेप्पो सिरिया का दूसरा सबसे बड़ा शहर है। एक नगर-दुर्ग इसके बीचो-बीच एक विशाल पत्थर पर बना है जिसके चारों ओर सुरक्षा हेतु गहरी खाई बनी है जो कभी पानी से भरी होती थी। इस किले में अनेक प्राचीन एवं मध्य युगीन सभ्यताओं एवं राज्यों के भवन एवं खंडहर मिलते हैं। हिती, कान्नाइट, यूनानी, रोमन, इस्लामी तथा ऑर्मेन तुर्क काल के खंडहर एवं महल पुरातत्ववेत्ताओं एवं इतिहासकारों के काफी महत्वपूर्ण हैं। विभिन्न कालों के अवशेष परत-दर-परत अवस्थित हैं जिन्हें खुदाई द्वारा उजागर किया गया है, मैमलूक तथा तुर्क काल के माने जाते हैं। मध्ययुगीन भवन अभी भी सही सलामत हैं। महल, हमाम, स्वागत कक्ष आदि अभी भी बेहतरीन हालत में हैं और इस्लामी बास्तुकला का श्रेष्ठ उदाहरण माने जाते हैं। वहाँ एक सुन्दर पुरानी मस्जिद भी है जहाँ आज भी नमाज अदा की जाती है।

एलेप्पो शहर का बाजार सेकड़ों साल पुराना है और कोसों तक फैला हुआ है यह बाजार पूरी तरह से ढका हुआ है और खरीददारों को ढकी टेढ़ी-मेढ़ी सड़क के दोनों ओर सजाये गये दुकानों में जरूरत की हर चीज मिल जाती है। इस भूल-भुलैया में आपको हर मनचाही चीजें मिलेगी। उसका जेबराती दुकानों की गली बहुत महशूर है जहाँ आकर्षक डिजायनों के सोने के हार, कंगन तथा अन्य आभूषण पसंद किये जाते हैं। रंग-बिरंगी कशीदाकारी वाले चादरों, पत्थरों एवं बर्तनों पर की गयी नक्कासी, बेहतरीन डिजाइनों के कालीन एवं ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों के लिये यह बाजार मशहूर है।

अगले दिन यानी 5 मार्च को हमलोग पाल्मिरा गये। रोमन युग इस शहर का मात्र अब भग्नावशेष ही बच गया है। इस शहर को रानी नैनोबिया ने तीसरी सदी में बनवाया पर इसे 272 ई. में रोमन सम्राट ऑरिलियन ने ध्वस्त कर दिया।

हमलोगों ने एक दिन सुबह-सुबह पाल्मिरा की ओर प्रस्थान किया। रास्ता रेगिस्तानी था, दूर-दूर तक पेड़-पौधे, मकान नहीं दिखाई देते थे। केवल कहीं-कहीं भेड़ों के झुंड दिखते थे जिन्हें बहू (बेदूइन), गड़ेरिये चराते रहते थे। एक स्थान पर सड़क से थोड़ी दूर हटकर एक तम्बू दिखा। ड्राइवर ने बताया कि उसमें बहू रहते हैं। यह सुनकर मेरी उत्सुकता बढ़ गयी और उनसे मिलने और बातें करने की इच्छा तीव्र हो गयी। मैंने ड्राइवर को गाड़ी उस ओर मोड़ने को कहा। जब हम टेंट-हाउस पहुँचे तो पाया कि वहाँ सिर्फ औरतें और बच्चे हैं। सभी मर्द भेड़ चराने गये थे। हमारा स्वागत सबसे पहले खुंखार कुत्तों ने किया, वे लगातार भौंकने लगे। हमें गाड़ी से उतरने की हिम्मत नहीं हुई। पर फिर औरतों ने उन्हें शांत किया और हमें अपने घर में आमंत्रित किया। उनका घर साफ-सुथरा और आधुनिक रहन-सहन के साधनों-टी.वी., बैटरी आदि से सुसज्जित था। हम अंदर एक कालीन पर बैठे और हमने उनके साथ चाय पी। थोड़ी देर में मर्द भी आ गये। उनसे बातचीत होने



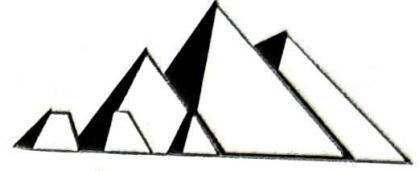
लगी और उनके जीवन के बारे में काफी जानकारी मिली। बहू हमेशा रेगिस्तान में एक से दूसरी जगह घूमते रहते हैं। एक स्थान पर लगभग 3-4 महीने ही रहते हैं। वेधों के दूध की बिक्री से ही उनकी आय होती है। इसके लिए उनका सम्पर्क एजेंटों से, जो शहरों में दूध का कारोबार करते हैं, रहता है। शादी-ब्याह अधिकांश बहू समुदाय में ही होता है, पर कभी-कभी शहर या गांव में भी होता है। इबादत के लिए वे लोग पास की मस्जिदों में जाते हैं।

वहाँ हमलोगों ने कुछ तस्वीरें भी खींची। उन्होंने हमें भाव-भीनी विदाई दी। हमलोगों ने महसूस किया कि चकाचौंध की इस दुनिया में जहाँ सभी सतही आधुनिकता की होड़ में लगे हैं, कुछ लोग ऐसे भी हैं जो सरल जीवन जीते हुए स्वतंत्रता का पूरा आनंद लेते हैं। वैसे लोग अपनी आजाद जिन्दगी बसर करने के लिए आधुनिक सभ्यता की शहरी सुख-सुविधा त्याग करने को तैयार हैं।

सिरिया के नागरिक आधुनिक वस्त्र पहनते हैं और उनकी रहन-सहन पश्चिम से काफी प्रभावित हैं। हालांकि यह मुस्लिम बहुसंख्यक है, वहाँ इसाई भी अच्छी संख्या में हैं, पर उनमें धार्मिक सहिष्णुता प्रचुर मात्रा में है। सभी अपना-अपना अनुष्ठान करने हेतु स्वतंत्र है। पर वहाँ ईरान की तरह की राजनीतिक स्वतंत्रता पर अंकुश है। वहाँ के राष्ट्रपति हाफिज अल असद की तस्वीर आपको घरों, दुकानों, होटलों, दफ्तरों तथा एयरपोर्टों पर चिपकी मिलेंगी। उनकी शिकायत करना अपनी शामत बुलाने के बराबर है।

लेबनान : यह सिरिया के दक्षिण-पश्चिम में भूमध्यसागर से सटा हुआ छोटा-सा देश है जो द्वितीय महायुद्ध के बाद सिरिया से अलग कर बनाया गया। यहाँ मुख्यतः मैनोराइट ईसाई, शिया मुस्लिम तथा दूज मुस्लिम रहते हैं। यह देश लेबनान पर्वत और भूमध्यसागर के बीच बसा है। यहाँ का बेकार पठार काफी उपजाऊ है जहाँ तरह-तरह के फलों एवं सब्जियों की खेती की जाती है। यहाँ के पहाड़ बहुत ऊँचे हैं जो जाड़ों में बर्फ से ढक जाते हैं। प्राकृतिक छटा एवं मृदु जलवायु के कारण लेबनान पर्यटकों के लिए हमेशा आकर्षण का केंद्र रहा है। पर वर्ष 1977 से 1991 के बीच का गृह-युद्ध पर्यटन उद्योग के लिए काफी घातक साबित हुआ। यह गृह-युद्ध मुख्यतः मैनोराइट ईसाइयों एवं मुसलमानों, जो बहुसंख्यक होते हुए भी राजनीतिक और आर्थिक रूप से काफी पिछड़े थे, के बीच हुआ था। आज भी बेरूत शहर के घने इलाकों के कई टूटे-फूटे मकान तथा सड़कों अन्य मकानों के ऊपर लगी गोलियों के निशान उस गृह-युद्ध की विभीषिका की याद दिलाते हैं। पर, आप डरिये नहीं। पिछले आठ वर्षों में लेबनान में शान्ति का साम्राज्य पुनः स्थापित हो गया है और विश्व भर के पर्यटक बड़ी संख्या में वहाँ पहुंचने लगे हैं।

लेबनीज खुद को अरब नहीं फिनिशियन मानते हैं जो प्राचीन काल से ही भूमध्य सागरी व्यापार के लिए विश्व-विख्यात हैं। भारत के गुजरातियों तथा माड़वाड़ियों की तरह ही लेबनीज व्यापार

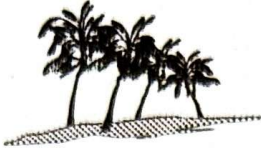


के मामले में बहुत तेज हैं। इस कारण लेबनान खनिज पदार्थों तथा अन्य प्राकृतिक संपदाओं के अभाव के बावजूद पश्चिम एशिया में सिर्फ व्यापारिक क्षमता के बल पर एक सम्पन्न देश के रूप में उभरा है जहाँ सौ से भी अधिक विदेशी बैंक कार्यरत हैं। सैकड़ों बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं बैंकों ने लेबनान को मध्य एशियायी व्यापार का केन्द्र बनाया है, क्योंकि यहाँ सफल कारोबार हेतु सभी आवश्यक सुविधायें मौजूद हैं। यहाँ हमने मैकडॉनाल्ड आदि अनेक "फास्ट-फूड" रेस्टोरंट देखे जहाँ लोगों की भीड़ लगी होती थी। व्यवसाय के मामले में यह देश मुझे मध्य एशिया के अन्य देशों-ईरान एवं सिरिया से काफी अधिक विकसित दिखा।

बेरूत शहर यूरोपियन महानगरों की तरह आधुनिक है जहाँ गगनचुम्बी इमारतों में आकर्षक दुकानें, कार्यालय, होटल तथा बैंक स्थित हैं, इन्हें पढ़े-लिखे कुशल कर्मचारी चलाते हैं जो कम्प्यूटर पर कार्य करने की क्षमता रखते हैं। इन कर्मियों में महिलायें काफी बड़ी संख्या में हैं। बेरूत की सड़कों पर मैंने तेहरान की तुलना में भी अधिक महिलाओं को मोटर गाड़ियाँ चलाते देखा। दोनों शहरों में एक यही अंतर दिखा कि बेरूत की महिला-चालक आधुनिक पोशाकों में थीं-तेहरान की तरह बुकों में नहीं।

बेरूत के नागरिकों का आमोद-प्रमोद का अड्डा है-"बीच"। मैं आपको एक दिन का अनुभव सुनाना चाहूँगा।

भूमध्यसागर के किनारे "बीच" पर लोग अपने प्रियजनों के साथ सागर-तरंगों के खेल का आनंद ले रहे थे। पानी में उतरकर कुछ बच्चे गेंद खेल रहे थे। वातावरण उल्लासमय था। लगता था हम मुम्बई चौपाटी पर आ गये हैं। कुछ लोग बालू पर फुटबॉल खेल रहे थे। एक बार मेरे पास भी बॉल आ गया और अनायास ही मैंने उसे एक "किक" दे मारा। शाम के समय समुद्र के दूसरे किनारे जहाँ बालू नहीं था और एक चौड़ा "वाक वे" बना हुआ था, काफी भीड़ रहती है और हर उम्र के लोग वहाँ विचरण करने आते हैं। वहाँ युवक-युवतियाँ बहुसंख्यक होते थे जो अपने मित्रों के साथ सैर-सपाटे के लिये आया करते थे। फुरसत और मस्ती का वैसा आलम मैंने पहले कभी नहीं देखा। कई युवक कारों में तेज संगीत बजाकर बाहर मस्ती में झूम रहते थे। इस इलाके में ज्यादातर ईसाई आते थे, मुस्लिम कम ही दिखते थे। महिलायें रंग-बिरंगे आधुनिक वस्त्र धारण किये टहलते नजर आती थीं। कई बच्चे "रोलर स्केट" पर "वाक वे" पर फिसलने का करतब दिखा रहे थे। खोमचे वाले लोगों के लिए भुने हुये मक्के बेच रहे थे। कुछ लोग समुद्र में किराये के हुक्के पी रहे थे। कुछ लोग समुद्र में वंशी डालकर मछली पकड़ रहे थे। आस-पास फास्ट-फूड की कई दुकानें थीं जहाँ लोग खा-पी रहे थे। मध्य रात्रि के बाद भी वहाँ काफी लोग घूमते नजर आते थे। "वाक वे" बगल में इतनी गाड़ियाँ लगी होती हैं कि शाम में जगह मिलनी काफी मुश्किल होती है।



मध्य एशिया एवं यूरोप की यात्रा के बाद देश लौटकर बड़ी खुशी हुई। महीने अपने वतन से अलग होना बहुत आसान काम नहीं है। अन्य देशों में उतने दिनों रहते हुए मन में गृह-विरह की टीस उठती है। मैं दाद देता हूँ दूतावास के कर्मियों को जो वर्षों वतन से बाहर रहते हैं। यदि वे छुट्टियों में घर न आये तो उनके लिए अपने आप को संभाले रखना मुश्किल हो सकता है। मैंने वैसे कुछ कर्मचारियों से बातचीत की, जो लम्बे समय से भारत से बाहर हैं। उन्होंने मुझे अपना दुःख-दर्द सुनाया।

पर, विदेश-भ्रमण से जीवन के असंख्य रंगों से परिचित होने का सुअवसर प्राप्त होता है। अतः, मेरा सुझाव है कि यदि आप मानव-जीवन के अर्थ की व्यापकता का अनुभव करना चाहते हैं तो विदेश जाने का अवसर न खोयें। बच्चों के लिए भी यह सिर्फ शिक्षाप्रद नहीं बल्कि उनके आत्मविश्वास को बढ़ाने का सशक्त साधन भी हो सकता है।

मध्य एशिया की संस्कृति पर गहरी इस्लामी छाप है पर अलग-अलग देशों पर इसका प्रभाव अलग-अलग दिखता है। जहाँ एक तरफ ईरान में कट्टरवादी ताकतें राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर हावी हैं, वहीं दूसरी तरफ सिरिया में राजनीति छोड़ लोग अन्य क्षेत्रों में पूरा आजाद हैं। लेबनान में उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता भी हासिल है। यूरोप में वैयक्तिक स्वतंत्रता सबसे ज्यादा विकसित है-इतना ज्यादा कि कई बार हम भारतीयों को उसका स्वच्छंद प्रदर्शन देखकर "कलचर शॉक" की अनुभूति होती है। यदि हममें से कुछ को एम.टी.वी. या भी. चैनलों पर हो रहे कार्यक्रमों को देखकर वितृष्णा होती है तो लंदन या पेरिस की सड़कों के कुछ दृश्यों को देख प्रतिक्रिया तीव्र हो सकती है। इस कारण कई बार हम निर्णय कर लेते हैं कि हमारी संस्कृति विश्व में सबसे अच्छी है और भारत से बाहर जो दिखता है वह अपसंस्कृति है। इस तरह का विचार भी आत्यंतिक है और अपनी संस्कृति की भर्त्सना करने योग्य तत्वों को छुपाने का प्रयास है। वास्तव में हमें हर धर्म एवं संस्कृति का आदर करते हुए उन्हें समझने की कोशिश करनी चाहिए क्योंकि इनके उद्भव एवं विकास विशेष ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों में हुए हैं जो हमारी परिस्थितियों से भिन्न हैं। अन्य भाषाओं, संस्कृतियों एवं परम्पराओं के प्रति आदर भाव ही मेरी विदेश-यात्रा की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

...

यात्रा का उपयोग कल्पना को यथार्थ द्वारा नियमित करना है और यह विचारते रहने के स्थान पर कि वस्तुएँ कैसी हो सकती हैं, उन्हें यथातथ्य देखना है।

— डॉ० जानसन



आज का बेचारा आदमी

श्री अरूण कुमार सिंह

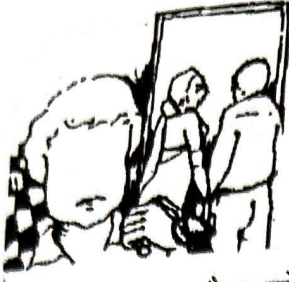
महालेखाकार (ले.एवं.ह.)-II, बिहार, पटना

वह फिर आया था
अपने काम के लिए अनुनय करने,
मैंने मना किया था उसे,
कहा था-मत आना दुबारा,
मैं तुम्हारा कोई काम नहीं करूँगा ।
पर जब वह आया दुबारा,
मैंने उसे बिठाया, बातें कीं,
काम की नहीं, दूसरी बातें ।
पर अंत में काम की बातें भी हुई ।
मैंने उससे वादा किया-
बात करूँगा उसके काम के विषय में,
उस उच्चाधिकारी से जिसे मैं जानता हूँ ।
(आखिर मैं भी एक उच्चाधिकारी हूँ,
एक उच्चाधिकारी ही दूसरे की सुनता है)
मैं जब पूछता हूँ खुद को
क्यों किया यह वादा मन के विपरीत
तब पाता हूँ यह उत्तर -
आदमी वह सच्चा है और उसका काम
है बहुत जरूरी,
वह मुझे जानता है,

कहाँ जायेगा वह बेचारा ?
मेरे बिना वह खुद को समझता बेसहारा ।
हम आज जिस समाज में रहते हैं
उसमें केवल बड़ों की चलती है
जो खुद बड़े नहीं हैं, बड़ों के सहारे हैं,
जिनको नहीं बड़ों का सहारा
उसे सिर्फ ख का सहारा ।
क्या बदल नहीं सकते इस समाज को
जिसने आदमी को इतना बना दिया
है बौना,
मजबूर कर दिया है माँगने को दया
की भीख ।
क्या मनुष्य बगैर सहारे के नहीं खड़ा
हो सकता अपनी पूरी ऊँचाई तक ?
उतना उँचा जितना ऊँचा है हिमालय,
जितनी ऊँची होती है कल्पना की
उड़ान,
जितने ऊँचे होते हैं उसके आदर्श
क्या इंसान का कद उतना ऊँचा नहीं
हो सकता ?

दया दोतरफ़ी कृपा है । इसकी कृपा दाता पर भी होती है और पात्र पर भी ।

- शेक्सपियर



एक बार फिर

श्री ललन प्र. श्रीवास्तव
वरिष्ठ लेखा अधिकारी, हिन्दी कक्ष

डा. सौरभ को सोये हुए अभी दो घंटे भी नहीं हुए थे कि टेलिफोन की घंटी बजने लगी। लगातार घंटी की आवाज से डा. सौरभ की नींद उचट गयी। अलसाये हुए, लेटे-लेटे ही उन्होंने रिसीवर उठा लिया।

अस्पताल से इमरजेन्सी कॉल था। डा. सौरभ झटपट तैयार होकर अस्पताल पहुँचे। रेल-दुर्घटना की शिकार युवती जिसकी आयु लगभग तीस पैंतीस वर्ष की थी, ओ.टी. में पड़ी थी। भीषण पास-पास कोई परिचित भी नहीं था। डा. सौरभ ओ.टी. में उस युवती का परीक्षण करने के लिए घुसे। युवती का चेहरा चोट से सूज कर वीभत्स दीख रहा था। रक्त बहने से वह मृत-प्राय दीख रही थी। उसके बदन पर सूखे रक्त के निशान मौजूद थे। आवश्यक जाँच-पड़ताल के पश्चात् तीन घंटे की गहन शल्य-चिकित्सा सम्पन्न कर डा. सौरभ जब घर लौटे तब सुबह हो चुकी थी। कॉफी पीते-पीते मेज पर पड़े अखबार देखने लगे। प्रथम पृष्ठ पर रात की रेल-दुर्घटना का समाचार छपा था। अखबार पढ़ते-पढ़ते वे किसी सोच में डूब गये।

डा. सौरभ एम.एस. की शिक्षा पूरी कर विदेश जाने की सोच रहे थे तभी आज से लगभग दस साल पूर्व ऐसी ही एक रेल-दुर्घटना में डा. सौरभ ने अपने माता-पिता और छोटी बहन को हमेशा के लिए खो दिया था। हठात् आयी विपत्ति ने उनका सपना चूर कर दिया था। जीवन में अंधेरा छा गया। यही सोचते-सोचते डा. सौरभ सोफे पर लेट गये। रात भर की थकान थी, इस बीच न जाने उन्हें कब नींद आ गयी।

सौरभ का तब दुनियाँ में अपना कोई नहीं था। उस गाढ़ी विपत्ति में दीन-दयाल बाबू ने ही सहारा दिया था।

दीन-दयाल बाबू सौरभ के पिता जानकी शरण के परम मित्र थे। उम्र करीब साठ-पैंसठ के आस-पास रही होगी। सरकारी पेंशनभोगी दीन-दयाल बाबू दम्मा के मरीज थे। जब वे चालीस-पैंतीस वर्ष के थे तभी पत्नी का देहान्त हो चुका था। संतान के नाम पर एक पुत्री थी-सुरभि। जब दीन-दयाल बाबू ने अपने मित्र-पुत्र सौरभ को अपने साथ रहने का प्रस्ताव रखा तब सौरभ को भी दूसरा विकल्प नहीं था। बचपन से ही वह दीन-दयाल बाबू के स्नेह का पात्र रहा था। औपचारिकता की गुंजाइश नहीं थी। वह राजी हो गया।

सौरभ, सुरभि और दीन दयाल बाबू बस परिवार में तीन ही व्यक्ति थे। सौरभ और सुरभि की उम्र में तीन-चार साल का अन्तर था। सौरभ मेधावी और सरल प्रकृति का युवक था। सुरभि सुन्दर मधुरभाषी विनोद प्रिय स्वभाव की लज्जाशील युवती थी। वह बी.ए. फाइनल की छात्रा थी। संगीत और कविता में भी उसकी रुचि थी। गृह-प्रबंध सुरभि के दक्ष हाथों में कुशलपूर्वक चल रहा था।

दीन दयाल बाबू सुलझे हुए व्यक्ति थे। मकान किराया और पेंशन से गुजारा हो जाता था अर्थ-चिन्ता नहीं थी। उनकी कोई चिन्ता थी तो वह थी सुरभि का विवाह। अच्छे पात्र के हाथ उसे सौंप

देना ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य शेष रह गया था। दम्पा के पुराने मरीज थे। दौड़-धूप कर पुत्री के लिए वह जुटाना उनके वश में नहीं था। उनकी नजर सौरभ पर थी जो उनकी दृष्टि में सुरभि के लिए सर्वथा अनुकूल था, किन्तु सौरभ और सुरभि दोनों दीन-दयाल बाबू की इस युक्ति से अनभिज्ञ थे। यद्यपि उन दोनों में हम उम्र की मित्रता अवश्य थी, तथापि प्यार जैसी किसी अनुभूति का उन्हें आभास तक नहीं था। दीन-दयाल बाबू उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में थे।



सौरभ सुरभि के समक्ष न कभी प्रेम-प्रदर्शन करता और न अपने दुःख या शोक का राग अलापता; किन्तु दोनों की एक दूसरे का साहचर्य अच्छा लगता। वे दोनों घंटों बैठकर दुनियाँ भर की बातों पर बहस करते; साहित्य, राजनीति, खेल-कूद और संगीत पर अपनी-अपनी राय जाहिर करते तथा एक-दूसरे को हंसते-हंसाते। दीन-दयाल बाबू की उत्साहवर्द्धक सीख और सुरभि का प्रमुदित स्वभाव सौरभ को साल भर में ही सहज बना दिया। सुरभि का व्यक्तित्व, हास-परिहास और विनोदी स्वभाव किसी भी सरल प्रकृति के युवक को आकर्षित करने में पूर्णतः सक्षम था। सौरभ इस आकर्षण से अपने को अछूता नहीं रख सका।

सौरभ मितभाषी और संकोची था। उम्र के हिसाब से वह कुछ ज्यादा ही गम्भीर दीखता था। ठीक इसके विपरीत सुरभि चंचल, विनोदी और मुखर थी। अंग सौष्टव मनोहारी था। धीरे-धीरे सुरभि का साहचर्य सौरभ के अन्दर एक अलौकिक सुख का आनन्द देने लगा, किन्तु स्वभाववश वह अपनी इस अनुभूति को मुंह से कहने में सर्वथा अयोग्य पाता। प्रेम की इस अनुभूति को जब कभी शब्दों में ढालने का प्रयास करता तो संकोचवश उसकी वाणी मूक हो जाती।

कहते हैं कि जब वाणी मूक हो जाती है तब आँखें बोलने लगती हैं। संकोची सौरभ ने मुंह से कुछ बोले बिना ही आँखों से अपने मन की बात सुरभि तक पहुँचा दी। सौरभ की शरारती आँखों की भाषा सुरभि के लिए यद्यपि नई थी, किन्तु उसकी लिपि को शनैः शनैः सीखने और पढ़ने में उसे भी आनन्द आन लगा। अब विनोदी और मुखर सुरभि के चेहरे पर सौरभ की प्रणय-दृष्टि, उसे मूक बना देती ओर उस दृष्टि की उष्णता में आत्मविभोर सुरभि एक अज्ञात सुखानुभूति से अनुरागमय हो जाती। शर्म से अबीरीलाल हुए चेहरे पर आयी मुस्कान के बीच रजत-सी दंत श्रेणियों को दामिनी-सी चमका, रेशमी पलकों को उठा-गिराकर सौरभ के अन्दर एक कौंध उत्पन्न कर देती। जिह्वा शिथिल रहती। किन्तु दोनों के हृदय साथ-साथ धड़कते। प्रथम-प्रणय की अनुभूति दोनों के लिए सुखद थी जिसके आकर्षण से वे अपने आप खिंचते हुए एक अज्ञात किन्तु सुहाने प्रदेश में पहुँच चुके थे। सुरभि ने दर्द निवारक दवा बनकर सौरभ का शोक हर लिया और सौरभ का प्रवेश सुरभि का वसंत बन गया।

दीन-दयाल बाबू इस परिवर्तन से अनभिज्ञ नहीं थे, किन्तु सौरभ के भविष्य को अवरूद्ध करना भी उन्हें पसंद नहीं था। प्रतीक्षा थी तो केवल यह कि सौरभ नेशनल स्कालरशिप का लाभ लेकर विदेश से वापस लौट आये। सुरभि को भी शायद यही मंजूर था। डा. सौरभ इसी बीच विदेश रवाना हो गये, किन्तु दो साल बाद जब वे लौटे तब सब कुछ समाप्त हो चुका था। आशियाना बनने से पूर्व ही दीन-दयाल बाबू की मृत्यु के झटके से बिखर गया।

अस्पताल में बैठे डा. सौरभ पुरानी बातों को याद करते-करते इस तरह खो गये कि उन्हें यह भी याद नहीं रहा कि तीन सप्ताह पूर्व जिस स्त्री की शल्य-चिकित्सा उन्होंने की थी, आज उसके चेहरे की पट्टी भी खोलनी है। नर्स ने आकर जब उन्हें याद दिलाया तब उनकी तन्द्रा टूटी और धीरे-धीरे ओ.टी. की ओर चल पड़े। मरीज के मुँह की पट्टी खोल दी गयी थी और वह बेड पर चित पड़ी छत की ओर देख रही थी। जैसे ही डा. सौरभ कमरे में घुसे मरीज को देखकर अवाक रह गये। वह सुरभि थी। सुरभि ने भी डा. सौरभ को देखते ही पहचान लिया और अपनी आँखें बन्द कर लीं। किन्तु, उन बन्द आँखों से लगातार आँसू बहने लगे।

सुरभि को अपने घर लाकर स्वयं डा. सौरभ उसकी देख-भाल करने लगे। रेल-दुर्घटना का सदमा अभी तक उसके चेहरे पर विद्यमान था। डॉ० सौरभ के मन में सुरभि के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उठते किन्तु सुरभि की स्थिति देख चुप रह जाते। अपने कर्तव्य बोध का स्मरण आते ही डा. सौरभ ने सुरभि को एक मरीज के अतिरिक्त कुछ दूसरा समझने की भूल से बचते रहने का प्रयास भी किया, किन्तु जैसे-जैसे सुरभि का स्वास्थ्य सुधरता गया और वह सहज होती गयी; डॉ. सौरभ की आँखों में एक नई चमक आ गई।

चार महीने इसी तरह बीत गये। सुरभि अब पूर्णतः चंगी हो गयी थी। चेहरे की ललाई वापस आ गयी, किन्तु विनोदप्रिय सुरभि अब गुम-सुम ही रहती। चालीस वर्षीय डा. सौरभ जो स्वभाव से संकोची और मितभाषी थे सुरभि के समक्ष गम्भीर ही बने रहते। सुरभि अपने अतीत के पाँच वर्षों की घटनाओं से त्रस्त थी। उधर डा. सौरभ इन्हीं पाँच वर्षों के अतीत को ज्ञात करने के लिए व्याकुल थे, किन्तु दोनों की अब अपनी सीमायें थीं। चाहकर भी इस पर कोई पहल नहीं कर सका।

सुरभि एक नारी थी। नारी के स्वभाव में एक विलक्षणता होती है। पुरुष अपने मन की बात मुँह से भले ही न बोले किन्तु नारी उसकी आँखों से ही उसके मन की भावना को सहज ही भांप लेती है। उम्र से गम्भीर दीख रहे डा. सौरभ के मन में पुरानी स्मृतियाँ ताजी होने लगी थीं। उनका सुषुप्त प्यार अंगड़ाई ले रहा था जो डा. सौरभ की आँखों से स्पष्ट झलकता रहता। सुरभि भी इसे समझने लगी थी किन्तु उसका अतीत उसे चुप रहने के लिए विवश कर रहा था। फलतः वह तटस्थ ही बनी रहती। सुरभि की यह तटस्थता डा. सौरभ को और अधिक व्यग्र करती रहती। सुरभि की चुप्पी डा. सौरभ के लिए एक पहेली बन गयी थी। विदेश से वापसी के पश्चात सुरभि की हर सम्भव तलाश कर डा. सौरभ निराश हो गये थे। किन्तु विधाता ने एकबार जिन स्वादिष्ट व्यंजनों से परोसा जाने वाला थाल-दिखा, उसे क्षुधातुर करके, बड़ी चालाकी से उलट दिया था, आज वही व्यंजनपूर्ण थाल विधाता ने फिर लाकर स्वयं उसके समक्ष परोस दिया था जिसकी मोहक गमक से डा. सौरभ के लिए अब और सब्र करना मुश्किल हो रहा था। सौरभ के मन की अतल गहराइयों में वर्षों से संचित प्यार का मीठा और शीतल जल-प्रवाह उत्प्लावित होकर बाहर निकलना चाह रहा है, इसे प्यासी सुरभि भी देख ओर समझ रही थी, किन्तु एक अनजान भय हर क्षण उसे आगे बढ़ने से रोक रहा था। उसकी दशा ऐसे भूखे रोगी के समान थी जिसके समक्ष स्वादिष्ट मन-पसंद भोज्य-पदार्थ रख दिया गया हो किन्तु खाने की तीव्र लालसा के बावजूद वह कुपथ्य के भय से उसे नहीं खा पा रहा था।

एक दिन सुबह दोनों चाय पी रहे थे, सौरभ ने सुरभि की ओर देखा और अपनी चुप्पी तोड़ते हुए अतिसंयत भाव से कहना शुरू किया- 'सुरभि तुम मुझे गलत मत समझना। दुर्घटना होने के कारण तुम्हारा सूजा चेहरा वीभत्स दीख रहा था जिसे मैं पहचान भी न सका। तुम्हारा कोई परिचित भी तुम्हारे साथ नहीं था। एक डाक्टर के कर्तव्य बोध और मानवता के नाते ही मैंने अबतक जो सम्भव हो सका है; उसे किया है। रेल-दुर्घटना के बहाने नियति ने एक बार फिर हम दोनों को साथ ला खड़ा कर दिया है, किन्तु हम दोनों की दशा अब एक ही पिंजरा में कैद उन दो पंछियों की तरह है जो शायद उड़ना तो चाहते हैं किन्तु पिंजरे की सीमित परिमिति उन्हें पंख भी फड़फड़ाने नहीं दे रही है। सुरभि एकटक डा. सौरभ को देख रही थी। डा. सौरभ ने आगे कहना शुरू किया- विदेश से लौटने पर मैं सीधा तुम्हारे घर गया। मन में उत्साह और उमंग थी। अपनों से वर्षों बाद मिलकर प्राप्त होने वाली प्रसन्नता की कल्पना से मैं आत्म विभोर था किन्तु वहाँ तबतक सब कुछ बदल चुका था। कोई भी ऐसा व्यक्ति वहाँ नहीं मिला जो तुम लोगों का पता दे सके। मेरी सारी आशाओं पर ब्रजपात हो गया। पागलों की तरह गत पाँच वर्षों में तुम्हें ढूँढ़ने का हर सम्भव प्रयास मैंने किया, परन्तु तुम्हें नहीं पाकर हताश हो गया।

सुरभि अब अपने को संयमित नहीं रख सकी। गत चार महीनों से धैर्य का बाँध जो उसने अपने मन में बाँध रखा था; सौरभ की बातों से वह एकाएक भरभराकर टूट गया। उसकी स्थिति उस वृक्ष के समान थी जो बाढ़ से उत्प्लावित नदी के किनारे खड़ा तो था किन्तु उमड़ती जल-राशि के प्रबल प्रहार से प्रति क्षण दुर्बल होता जा रहा था। जड़ को जमीन पर और अधिक टिकाये रखना सम्भव नहीं था। अपनी चिर चुप्पी तोड़ते हुए सुरभि बोलने लगी- तुम्हारे विदेश जाने के दूसरे ही सप्ताह पिताजी अचानक बीमार पड़ गये। दम्मा तो था ही; पक्षाघात का शिकार होकर उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। पिताजी की देखभाल जयंत करने लगा। वह दूर के रिश्ते में मेरी भाभी का भाई था। संकट के दिनों में जयंत रक्षक की भाँति दिन-रात खड़ा रहता। पिताजी को शौच कराना, स्पंज करना, डाक्टर के पास भाग-दौड़ सब कुछ जयंत ही सम्भाल रहा था। पिताजी की आँखों में हताशा के चिह्न मुझे स्पष्ट दीख रहे थे। मुँह से बोल पाने में असमर्थ थे। मुझ पर दृष्टि पड़ते ही उनकी आँखों से आँसू बहने लगते। मैं पिताजी की इस असमंजसपूर्ण स्थिति को समझ रही थी। अंतिम समय में वे कोई अन्य रास्ता न देख मेरा हाथ जयंत के हाथों में देकर चल बसे। परिस्थिति-वश मैं विरोध नहीं कर सकी। इतना कहकर सुरभि फफक-फफक कर रोने लगी। सौरभ हतप्रभ होकर चुपचाप बैठा रहा। सुरभि के अतीत की गाथा ने उसके सपनों पर तुषारापात कर दिया। उसे इतना भी होश नहीं रहा कि सामने बिलखती सुरभि को ढाढ़स के दो शब्द कह सके।

रात भर सौरभ जयंत के विषय में ही सोचता रहा। चार महीने में न सुरभि ने ही कभी घर वापस लौटने की बात की थी और न जयंत ने ही सुरभि की कोई खोज-खबर ली। ऐसा क्यों? यह प्रश्न सौरभ के मन-मस्तिष्क को मथ रहा था। अगले दिन-स्वयं सुरभि ने ही सब कुछ बतला कर मन का बोझ हल्का कर दिया।

पिताजी की मृत्यु के बाद मैं अकेली हो गयी। जयंत को दिल्ली में नौकरी मिल गयी। लखनऊ में अब हमारे लिए रहना सम्भव नहीं रहा। सामाजिक स्तर पर हमारा विवाह नहीं हो सका था। लोग हमें

शक की निगाह से देखने लगे। सब कुछ इतनी शीघ्रता से घटता गया कि मैं तुम्हें अपनी बदली हुई परिस्थिति के विषय में बताना भी नहीं सकी। मकान बेचकर हमलोग दिल्ली आ गये। जयंत को मैंने तुम्हारे विषय में सबकुछ बतला देना चाहा, किन्तु पिताजी की अंतिम इच्छा हमेशा बाधक बनकर खड़ी रहनी।

जयंत मेरा पूरा ख्याल रखता था। विवाह के लिए उसने कभी दबाव नहीं डाला। हम दोनों पिछले डेढ़-साल से अधिक का विलम्ब था किन्तु अपने विषय में तुम्हें जानकारी देने का कोई उपाय नहीं था यह सोच-सोचकर मैं परेशान रहने लगी। एक ओर तुम्हें नहीं पाने का दुःख सताता रहता तो दूसरी ओर जयंत को अपना कर जीना भी मेरा विचलित मन स्वीकार नहीं कर रहा था। मैं एक साथ दो-दो विवशताओं के बीच छटपटा रही थी कि अचानक जयंत गम्भीर रूप से बीमार पड़ गया। इतना कमजोर हो गया कि उसे बिस्तर से उठा कर बैठाने से लेकर अन्य सभी सेवा शुश्रूषा का दायित्व मुझ पर अनायास आ पड़ा। धीरे-धीरे मेरी झिझक अपने-आप दूर होती गयी और उसकी देख-भाल करते-करते कब हम दोनों विवाह के बंधन में बंध गये इसका उत्तर मैं स्वयं अपने-आप से पूछती आ रही हूँ।

जयंत को कम्पनी के कार्य से हमेशा दौरे पर जाना पड़ता था। महीना भर में वह मुश्किल से दस दिन दिल्ली में रह पाता था। आरम्भ में तो उसकी पूरी आसक्ति मुझमें थी, किन्तु समय बीतने के साथ-उसकी आतुरता में धीरे-धीरे कमी आती गयी। मैं इसका कारण नहीं समझ पा रही थी किन्तु इतना स्पष्ट था कि जिस प्रणय की लालसा जयंत को मुझसे थी, उसे पूरा करने में मैं कृपण ही बनी रही। इसका कारण कदाचित मेरी मानसिकता थी जो पत्नी तो परिस्थितिबल बन गयी किन्तु प्रेमिका-सा औदार्य देना सम्भव नहीं हो सका।

जयंत अब घर से अधिक बाहर ही रहा करता। बार-बार दौरे पर जाना, जलसों और पार्टियों में दावत खाना, पीना-पिलाना उसकी दिनचर्या थी। मैं देर रात तक उसके घर लौटने की प्रतीक्षा करते करते सो जाती। सुबह उठती तो जयंत को ड्राइंग रूम के सोफे पर ही औंधा हुआ पाती। मैं अपने को उपेक्षित महसूस करने लगी। मन में कुंठा घर करती गयी। मैंने अब जयंत को कहना-सुनना भी छोड़ दिया था। वह भी बोलता तो कुछ नहीं था, किन्तु अपनी मनमानी से बाज नहीं आता। मेरा स्वास्थ्य दिनोदिन गिर रहा था, किन्तु जयंत को इसकी भी परवाह नहीं रही। वह कट्टर भौतिकवादी बन चुका था जिसकी प्रत्येक बात में लाभ-हानि के विचार की ही प्रधानता थी। अब उसके मन में कोमल भावों का सर्वथा अभाव था। मेरी सेवा और त्याग जो कलतक उसकी निगाहों में गुण थे, अब महत्वहीन हो चुके थे। सुन्दर रमणियों के संग विहार करना, पीना-पिलाना और दौरे पर भागते रहना उसका नियम बन गया। पत्नी घर में अन्य वस्तुओं की तरह एक निर्जीव वस्तु सदृश हो गयी जैसे विद्युत की रजत-ज्योति में दीपक का मलिन प्रकाश। मैं पतवार विहीन नाव की तरह दिशाहीन चलने के लिए विवश हो गई।

एक दिन तो जयंत सभी सीमाओं और मर्यादाओं को ही लांघ अपनी नई प्रेमिका मिस माईकेल को लेकर घर आ गया। जयंत की इस ढिंढाई से मैं जल-भून गई। मुझे किसी दुश्चरित्र की पत्नी बनकर जीवित

रहना स्वीकार नहीं था। पत्नी सबकुछ बर्दाश्त कर सकती है किन्तु अपनी सौत नहीं देख सकती। मेरा नारीत्व मुझे धिक्कार रहा था। मैं जयंत की पत्नी थी जहाँ मुझे मान-सम्मान, प्यार और विश्वास का पूरा हक था। मैं केवल भोग या उपेक्षा की पात्रा नहीं हो सकती थी। अपने मान-सम्मान और विश्वास पर आये आघात को अब और सहन करना मेरे लिए असम्भव हो गया। उसी क्षण मैं बिना कुछ बोले घर छोड़ कर स्टेशन भाग आयी। मन अशांत था। मुझे कहाँ जाना है इसका भी ध्यान नहीं रहा। गाड़ी खुल रही थी। मैं बिना किसी सोच-विचार के उस पर सवार हो गयी; किन्तु नियति ने मुझे एक बार फिर ठग लिया। भीषण रेल-दुर्घटना से जीवित लाकर उसने फिर तुम्हारे ही कदमों में ला पटक। इतना कहते-कहते सुरभि का गला अवरूद्ध हो गया। हिचकियाँ आने लगीं और आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे।

सुरभि की यह विकल दशा देख डा. सौरभ भी व्यथित हो उठे। अगाध संवेदना में डूबे डा. सौरभ ने सुरभि के कंधे पर हाथ रखा और गालों पर ढुलक रहे अवरल आँसुओं को पोंछते हुए ढाढ़स देने लगे। सुरभि को डा. सौरभ का वह स्पर्श एक अनुपम सुखानुभूति से भर रहा था। अब वह भोग्या नहीं बल्कि अपने मन को प्रेम और आदर की मूर्ति महसूस कर रही थी। वर्षों पूर्व उन दोनों के हृदय में पावन-प्रणय से प्रज्वलित भट्ठी पर जो राख-परत जमकर उसकी उष्णता को कम कर दिया था वह दोनों के स्पर्शमात्र से उड़कर उस अग्नि को पुनः दहका दिया जिसके पावन-प्रकाश में उनके अंग-प्रत्यंग देदीप्यमान हो उठे। भय मुक्त होकर दोनों ने एक-दूसरे का हाथ पकड़ लिया तभी अचानक कालबेल की आवाज से वे चौंक पड़े।

दरवाजे पर जयंत खड़ा था। उसे देखते ही सुरभि सहम कर खड़ी हो गयी। जयंत अपना परिचय देता हुआ डा. सौरभ के उपकार के प्रति हाथ-जोड़ कृतज्ञता प्रदर्शित करने लगा। डा. सौरभ हक्का-बक्का होकर सब कुछ देख-सुन रहे थे। जयंत बड़ी आत्मीयता से सुरभि के पास इस तरह खड़ा था जैसे कोई थका परेशान यात्री अंत में अपनी सही मंजिल पाकर सुस्ता रहा हो। सुरभि ने जयंत की ओर देखा। जयंत की आँखों में अपराध-बोध के साथ क्षमा याचना स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी। जयंत अपनी सफाई कुछ दे उसके पूर्व ही सुरभि ने एक नजर डा. सौरभ पर डाली जहाँ उनकी आँखों में अब आमंत्रण के स्थान पर उसे अलविदा के स्पष्ट संकेत दिखाई दिये। जयंत सुरभि का हाथ पकड़ बाहर निकल आया। दरवाजे पर खड़ा डा. सौरभ तबतक उन दोनों को देखते रहे जबतक उनकी गाड़ी आँखों से ओझल नहीं हो गयी। विधाता ने एक बार फिर डा. सौरभ को अकेला छोड़ दिया।

...

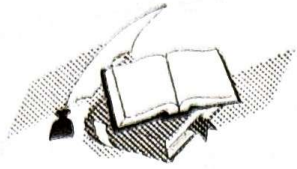
जीवन एक कहानी के सदृश है। वह कितनी दीर्घ है, यह नहीं, वरन् कितनी अच्छी है, यह विचारणीय विषय है।

— सेनेका

हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास

श्री हरेराम प्रधान

वरिष्ठ लेखाकार



हिन्दी के उद्भव और विकास से सम्बद्ध अनेक समस्याएँ हैं। हिन्दी वैदिक, संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश से होकर विकसित हुई और विकसित होती जा रही है। हिन्दी की ध्वनियों का विकास, रूपों का विकास और मुहावरों का विकास तथा वाक्य-रचना का विकास आदि अनेक विषय हैं, जिनपर विचार करना अति आवश्यक है। श्यामसुन्दर दास ने 'हिन्दी का विकास' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी थी, किन्तु वह बहुत संतोषजनक नहीं थी। उसके बाद धीरेन्द्र वर्मा का 'हिन्दी भाषा का इतिहास' प्रकाश में आया। इसमें संस्कृत से जो शब्द सिर्फ रूपों में लिये गये हैं, उनमें बीच की कड़ियों का अभाव है। बाद में उदय नारायण तिवारी, डा. हरदेव बाहरी तथा भोलानाथ तिवारी के ग्रंथ प्रकाशित हुए जिनमें अनेक समस्याओं पर बहुत ही गम्भीर एवं व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया है। ये पुस्तकें वर्तमान समय में प्रामाणिक मानी जाती हैं। इनके अतिरिक्त गुणानन्द जुआल, अम्बा प्रसाद सुमन आदि विद्वानों ने छोटी-बड़ी पुस्तकें इसी विषय पर लिखी हैं, जिनकी अपनी-अपनी कुछ-न-कुछ विशेषताएँ हैं। विश्वनाथ प्रसाद ने लंदन में रहकर ध्वनिशास्त्र पर कार्य किया, जिसका सम्बन्ध भोजपुरी से था, जो कालान्तर में हिन्दी भाषा को भी समृद्ध करने में सहायक सिद्ध हुआ। कैलाशचन्द्र भाटिया का "हिन्दी भाषा में अक्षर तथा शब्द की सीमा" अपने आप में एक अद्वितीय ग्रन्थ है।

हिन्दी के रूपों से सम्बन्धित सबसे पुरानी दो पुस्तकें हैं—चंद्रधर शर्मा गुलेरी की "पुरानी हिन्दी"। इसमें प्राकृत से अलग होती हुई और हिन्दी के रूप धारण करती हुई अपभ्रंश पर बहस की गई है। दूसरी पुस्तक पद्म सिंह शर्मा द्वारा रचित "हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी"।

इन पुस्तकों में अनेक गम्भीर समस्याओं पर विचार संकलित किये गये हैं। इसी तरह की समस्याओं को गोविन्द दास सेठ ने "राजभाषा हिन्दी", रवि शंकर शुक्ल ने "राष्ट्रभाषा की समस्या" तथा चन्द्रबली पाण्डेय ने उर्दू से सम्बद्ध अनेक छोटी-छोटी पुस्तकें जैसे भाषा प्रश्न, मुगल बादशाहों की हिन्दी, उर्दू का रहस्य आदि।

हार्नले ने पूर्वी हिन्दी बोलियों पर "गौड़ी भाषायें" नामक एक ग्रंथ लिखा है। सामान्य रूप से ग्रियर्सन के सर्वेक्षण कार्य को अगे बढ़ाते हुये डा. हरदेव बाहरी की "ग्रामीण हिन्दी बोलियाँ" और भोलानाथ तिवारी की "हिन्दी भाषा" अपने आप में उल्लेखनीय साबित हुई हैं। हिन्दी बोलियों पर इधर बहुत संतोषजनक कार्य हुआ है। वास्तव में टर्नर और यूल्स व्लाख ने जिस भाषा कार्य-पद्धति को स्थापित किया था उसका अनुसरण करते हुये भारतीय विद्वानों ने आरम्भ में अपनी-अपनी बोली का अध्ययन करना अच्छा समझा। समय-समय पर अध्ययन की पद्धति बदलती रही है और एक युग में टर्नर और ग्रियर्सन या यूल्स व्लाख की पद्धति सर्वमान्य थी, किन्तु आज भाषाओं का विवरण देने के लिए एक नई पद्धति चल पड़ी है। हिन्दी बोलियों पर जो कार्य हुआ है, वह सर्वथा अनुकूल है।

हिन्दी ही हमारे राष्ट्रीय एकीकरण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या क्षेत्र की भाषा नहीं है, बल्कि समस्त भारत की 'भारती' के रूप में ग्रहण की जानी चाहिए।

— कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

हिन्दी साहित्य का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से आरम्भ होता है। उससे पहले इस आर्य भाषा का स्वरूप क्या था, यह सब कल्पना का विषय है। कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। आर्य चाहे कहीं बाहर से आये हों, अथवा यहीं सप्त-सिन्धु प्रदेश के मूल निवासी हों, यह निश्चित और निर्विवाद सत्य है कि वर्तमान हिन्दी प्रदेश में आने से पहले उनकी भाषा वही थी, जिसका साहित्यिक रूप ऋग्वेद में मिलता है। एक तरह से यह कहना ठीक होगा कि वैदिक भाषा ही प्राचीनतम हिन्दी है। इस भाषा का यह दुर्भाग्य है कि युग-युग में इसका नाम परिवर्तित होता रहा है, कभी वैदिक, कभी संस्कृत, कभी प्राकृत, कभी अपभ्रंश और अब हिन्दी।

एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि हिन्दी तो प्रादेशिक बोली मात्र है - एक समय में ब्रजभाषा थी, आजकल खड़ी बोली है। साहित्यिक भाषा तो देववाणी बनकर सुशिक्षित वर्ग में सीमित हो जाया करती है, जन-जन से उसका संपर्क नहीं रह जाता है। गंधार से कर कोसी तक के विशाल आर्यवर्त में एक ही बोली नहीं हो सकती थी। इसके प्रमाण वेद, बौद्ध विपिटक, अशोक की धर्मालिपियों, प्रादेशिक प्राकृतों और अपभ्रंशों से मिल जाते हैं। किन्तु साहित्यिक भाषा भी तो कोई-न-कोई बोली ही होती है, और जब वह बोली सामान्य एवं साहित्यिक भाषा की पदवी को प्राप्त होती है तो उसे आस-पास की अनेक बोलियों से समझौता करना पड़ता है। उनके शब्द, रूप और ध्वनिग्राम तक अपनाने पड़ते हैं। भारत में किसी युग की भाषा की प्रतिभा की मिट्टी भले ही लोक से ली जाती हो, किन्तु उसकी प्राण-प्रतिष्ठा पूर्वकालीन आर्यों की साहित्यिक भाषा से होती रही है, बल्कि लोकभाषा भी उसकी साहित्यिक भाषा से अनुप्राणित होती आयी है। हमारा तात्पर्य यह है कि साहित्यिक भाषा बोलियों के योग से विकसित होती है और विकासवान होकर बोलियों को प्रभावित भी करती है। अतः हिन्दी के लिए संस्कृत आदि का महत्व मूलभूत बोली या जनभाषा के रूप में भी है और साहित्यिक भाषा या देवभाषा के रूप में भी। युग-युग की बोलियों का हमारे पास कोई प्रमाण भी तो नहीं है। कोई लिखित रूप ही नहीं है, इसीलिए हमें तत्कालीन साहित्यिक भाषाओं को ही अपना आधार बनाकर आधुनिक आर्यभाषाओं के इतिहास को समझना है। जो काल-कवलित हो गया उसको पुनर्जीवित करना संभव नहीं जान पड़ता।

हिन्दी या प्राकृतों में जो कुछ है, वह आर्यों की ही भाषाओं से चला आ रहा है। आर्यों की सारी सम्पत्ति प्राकृतों और हिन्दी को प्राप्त हो गई है। आर्यों के आने से पहले इस देश में अथवा यदि आर्य सप्तसिन्धु देश के निवासी थे, तो भी भारत के अन्य प्रदेशों में, अनेक अनार्य जातियाँ रहती थीं, जिनमें चार मुख्य थीं-निग्रोट, कियत, ऑस्ट्रिक (आग्नेय) या निषाद और द्रविड़ या दस्यु। निग्रोट लोग अफ्रीका से आये अवश्य, किन्तु लगता है कि वे समुद्री-तटों के निकटवर्ती प्रदेश में ही छा सके थे और वहीं से वे दक्षिण पूर्वी द्वीपों की ओर खिसक गये थे। मध्य प्रदेश के लोगों से उनका सम्पर्क नहीं हो सका था। इसका प्रमुख कारण यह है कि आग्नेय जातियों और द्रविड़ों की समाई उन्नत भारत में नहीं हो पाई। वैदिक साहित्य में तो इनका नाम तक नहीं मिलता। हो सकता है तटवर्ती जातियों में उनके किन्हीं वंशों के चिह्न हों, और वहाँ की भाषाओं में कतिपय शब्द निग्रोट बोलियों के ग्रहण कर लिये गये हों, और कुछ-एक शब्द छन-छनकर मध्य प्रदेश तक भी पहुँचे हों, किन्तु इसकी खोज करना कठिन है। कुछ पहाड़ी लोग भी थे, जिनके वंशज आज भी हिमालय की तलहटी में पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए हैं। इन लोगों से आर्यों का

सम्पर्क हुआ था और दोनों आपस में मित्र बन गये थे। ऐसी स्थिति में संस्कृतियों और बोलियों का आदान-प्रदान होना स्वाभाविक था। यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध और किन्नर आदि पहाड़ी जातियों की संस्कृति पर्वतीय आर्य साहित्य में भरपूर मिलती है। इतिहास के अनुसार पौराणिक साहित्य में इनकी विशिष्ट प्रकृति जान पड़ती है। इन्हीं के देवताओं, इन्हीं की पूजा विधि, इन्हीं के विश्वासों और अंधविश्वासों को सर्वप्रथम मान्यता प्रदान की गई। इनका प्रदेश स्वर्ग और इन्द्रलोक कहलाने लगा। आर्यभाषा में अनार्य तत्वों की खोज करने वालों के लिए यह क्षेत्र अछूता पड़ा हुआ है। आग्नेय या निषाद जातियाँ पंजाब से पूर्व की ओर ये लोग कृषिकर्मी थे और इनकी संस्कृति ग्रामीण थी। इन लोगों ने नदियों की घाटियों में अपनी-अपनी छोटी बस्तियाँ बसाई। इसका मुख्य पेशा खेती करना था। उनमें जौ, ज्वार, चावल, नारियल, केला, ताप्ल, गुबाक, बैंगन, लौकी तथा काशीफल प्रमुख फल हैं। आर्यों ने इन्हीं से कृषि-कार्य सीखा या कम-से-कम उस कर्म में प्रगति की, क्योंकि अधिकांश आर्य जातियाँ मध्य एशिया के पहाड़ी प्रदेशों में रहती आ रही थीं। निषाद लोग हाथी पालने और सिखाने में निपुण थे। भारतीय इतिहास में आर्य "अश्व" की अपेक्षा आग्नेय "हाथी" का जो इतना अधिक महत्त्व रहा है उसका कारण स्पष्ट है। नावें चलाना और मछली पकड़ना भी इन निषाद जातियों का प्रमुख व्यवसाय था। इन क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति और भाषा के विकास में इनका विशेष योगदान रहा है। वर्तमान समय में भी राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, असम और उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाकों में मुंडा, संथाल, कोल हो, शबर खासी, मानछमेर, मुर्मू, मुमिंग आदि अनेक आदिम जातियाँ फैली हुई हैं, जिनकी बोलियों का तत्तददेश की बोली से सीधा सम्पर्क है।

द्रविड़-कुल की जातियाँ सांस्कृतिक दृष्टि से सबसे अधिक उन्नत रही हैं। मोहन-जोदड़ों, हड़प्पा आदि की खुदाइयों और बिलोचिस्तान में प्राप्त बाहुई नाम की द्रविड़ भाषा के अवशेषों से अनुमान लगाया गया है कि सिन्धु सौवीर आदि प्रदेशों में द्रविड़ जातियों का प्राबल्य था जिनसे आर्यों को कठिन संघर्ष करना पड़ा था। पंजाब से बाहर अपना प्रसार करते हुए पहले तो आर्यों ने इस संघर्ष से बचने की चेष्टा की और इसीलिए राजस्थान, सिन्धु अथवा गुजरात की ओर रूख करने के बजाय गंगा-यमुना के दुआबों को जीता। यहाँ की निषाद जातियाँ उतनी संगठित और हठीली नहीं थीं, जितनी उत्तरी प्रदेशों की द्रविड़ जातियाँ थीं। भारत के पश्चिम और दक्षिण में द्रविड़, दनिड़ या तमिल जातियाँ थीं, जिन्हें हमारे इतिहासकारों ने दस्यु, असुर, राक्षस और दानव कहा और जिन्हें आर्य-साहित्य में बड़ी घृणा और अवज्ञा से स्मरण किया जाता रहा। उत्तरी भारत को विजित कर लेने के बाद आर्यों ने द्रविड़ों से लोहा लिया और इन जातियों को उत्तर-पश्चिमी भारत से बाहर निकाल दिया। रामायण-काल तक उनसे बराबर लड़ते रहे। दक्षिण में आज भी इनकी संस्कृति और भाषा का अस्तित्व बना हुआ है। तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश में क्रमशः तमिल, मलयालम, कन्नड़ और तेलगू साहित्यिक भाषायें हैं, जिनको बोलने वालों की संख्या दस करोड़ से अधिक है। इन सबका अपना-अपना साहित्य है। तमिल भाषा का व्याकरण तिलकाप्पियम चौथी शती ई.पू. का बताया जाता है। व्याकरण और साहित्यिक स्रोतों से द्रविड़ भाषाओं और आर्य-भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाना और अधिक जरूरी है ताकि दोनों भाषाओं के आपसी सहयोग एवं सामंजस्य को बढ़ाया जा सके। द्रविड़ में संस्कृत तत्व इतना अधिक पड़ते हैं कि किसी भी शब्द अथवा रूप के बारे में प्रमाणपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि वह संस्कृत का है या द्रविड़ का। जैसे पठ्, 1

चोल, वेतस, शंख, कुन्तल, वेणी, तुण्ड, दण्ड, शिण्ड, कुशर, कोट, कुपूर इत्यादि। बहुत से लोग कहते हैं कि जिन शब्दों के समानधर्मी रूप भारत-यूरोपीय भाषाओं में नहीं हैं, अथवा जिन्हें धातुओं से सिद्ध नहीं किया जा सकता, वे द्रविड़ से व्युत्पन्न हो सकते हैं। छोटे तौर पर कहा गया है कि भारतीय आर्य भाषा में टवगीय ध्वनियाँ, अनुकरणात्मक शब्दावली, प्रत्ययों और समासों की योजना, संयुक्त क्रिया, भविष्यवत् काल, दो वचन, दो लिंग, विभक्ति के स्थान पर परसगों का प्रयोग कर्म वाच्य में अतिरिक्त क्रिया, वाक्य-योजना के कुछ तत्व द्रविड़ से आये हैं। इन जातियों के अतिरिक्त न जाने कितनी और छोटी-बड़ी जनजातियाँ थीं जो या तो मूलतः नष्ट हो गई या आर्यों अथवा दूसरी बड़ी अनार्य जातियों के घेरे में पड़कर विलीन हो गई। यह भी गौरतलब बात है कि कालान्तर में हूण, मंगोल, चीनी, तुर्क, अरब, शान (वर्मा से) आदि अनेक जातियाँ यहाँ आईं और घुलमिल गई। इन सभी ने भारतीय भाषाओं के निर्माण में अपना-अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

ऋग्वेद पंजाब के साहित्यकारों की कृतियों का संग्रह है। दसवें मण्डल में कुछ बाद की भाषा है। तब तक आर्य कुरु पांचाल प्रदेश की ओर बढ़ गये थे और मध्य प्रदेश की अनार्य जातियों का प्रभाव पड़ने लगा था। सामवेद और यजुर्वेद की भाषा में बढ़ते हुए अनार्यों का समीक्षण किया जा सकता है। अथर्ववेद की संस्कृति और भाषा पूरे तौर पर तत्कालीन मध्य प्रदेश की आर्यभाषा का प्रतिनिधित्व करती है। ऋग्वेदोत्तर साहित्य से वैदिक भाषा का परिचय मिलता है। इसका काल-देश भाषा शास्त्रीय साक्ष्य के आधार पर 1000 और 800 ई.पू. का उत्तर-पश्चिमी मध्य प्रदेश निश्चित किया जा सकता है। इस समय तक आर्यसत्ता और भाषा में पूर्व गंगा-यमुना के दुआवे तक व्याप्त हो गई थी। इसके बाद आर्यों का प्रसार दक्षिण और पूर्व दोनों दिशाओं में होता है। पूर्व और दक्षिण में रहते हुए भी शिष्ट और ब्राह्मण समान अपने धर्म, अपनी संस्कृति और अपनी भाषा के लिए पश्चिम से प्रेरणा प्राप्त करता था किन्तु वह अनार्य प्रभावों से भी अपने को बचा नहीं पा रहा था। पूर्व में ब्राह्मणों की अपनी भाषा थी, किन्तु वे लोग पश्चिम की आर्यभाषा बोलना गर्व की बात मानते थे-अदीक्षिता दीक्षितवाचन वदन्ति। उनकी अपनी कठिनाई थी-आर्यों के संयुक्त वर्ण, ऋ, ष, ण और कुछ अन्य ध्वनियाँ उन्हें क्लिष्ट जान पड़ती थीं। इसके अतिरिक्त अटनशील आर्य, जो पूर्व और दक्षिण की ओर जाते थे, वहाँ के लोगों की ध्वनियों का अनुकरण कर अपनी बात को सुबोध बनाने की चेष्टा करते थे। तात्पर्य यह कि पूर्व और पश्चिम के सान्निध्य से प्राचीन आर्यभाषा में परिवर्तन हो रहे थे और भाषा में तरह-तरह के सम्मिश्रणों का समावेश हो रहा था। स्थिति कुछ ऐसी ही थी, जैसी आज खड़ी बोली हिन्दी में अनेक पूर्वी प्रयोग के आ जाने से हो रही है और हिन्दी की व्यापकता और ग्राह्यता के नाते माँग यहाँ तक बढ़ गई है कि "ने" का भूतकालिक सकर्मक क्रिया के साथ प्रयोग क्यों न हटा दिया जाय, अथवा क्रिया में लिंगभेद करने की क्या आवश्यकता है। उदीच्यों की आर्यभाषा जब प्राच्यों में पहुँची तो उसमें अनेक परिवर्तन होना स्वाभाविक और अति आवश्यक हो गया।

पूर्वी ब्रात्यों की भाषा पर उदीच्यों के व्यापक प्रभाव के फलस्वरूप संस्कृत का उद्गम हुआ एवं उदीच्यों की भाषा पर प्राच्यों के प्रभाव की परिणति पाली आदि प्राकृतों में हुई, अर्थात् संस्कृत ने वैदिक परम्परा को अपनाते हुए थोड़ा-बहुत समझौता ब्रात्यों की सुविधा के लिए प्राच्य भाषा से किया गया और पाली आदि प्राकृतों ने जनभाषा के अनुकूल आर्यभाषा को ढाला किन्तु बात्य तत्वों की अधिक चिन्ता की।

इस प्रकार आर्यभाषा का विकास भारतीय समाज के विभिन्न स्तरों में दो समानान्तर कोटियों में हुआ- शिष्ट साहित्यिक ब्राह्मण समाज में उस भाषा, जिसके संरक्षक पाणिनि और अन्य आचार्य माने गये हैं और जन साधारण में व्याप्त ग्राम्य भाषा, जिसे बाद में गौतम बुद्ध और महावीर जैन ने प्रचार के लिए अपना माध्यम स्वीकार किया।

पाणिनि-काल तक वैदिक साहित्यिक भाषा थी, किन्तु जैसा कि ब्राह्मणों और उपनिषदों की भाषा से विदित होता है, वेदभाषा देवभाषा हो गई थी और कुरु-पांचाल की जनभाषा साहित्यिक स्तर की भाषा अग्रसर हो रही थी। आरम्भ में इसका रूप अस्थिर था, इसमें अनेक जनवादीय प्रयोग चल रहे थे और एक प्रकार की ऐसी ही अराजकता फैली थी, जैसी आज हिन्दी में व्याप्त है। पाणिनि ने विषमता में एकता और विविधता में समरूपता लाकर उस भाषा को स्थिर और संस्कृत किया। पाणिनि ने वैदिक को देव भाषा और इसको भाषा कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि उस काल में संस्कृत बोल-चाल की भाषा थी। किन्तु भाषा तो "बहता नीर" है। स्थिरीभूत होकर वह "कूपजल" हो गई और यह "कूपजल" धीरे-धीरे अधिक निर्मल, सुस्वादु और गहरा होता गया। इसके परम विकास की अवस्था तब जान पड़ी जब यह बोलचाल की भाषा नहीं रह गई। बौद्ध साहित्य और अशोक के शिलालेखों से प्रमाणित है कि तबतक कई बोलियाँ अपना सिर उठा रही थीं। विद्वानों ने संस्कृत-काल पांचवीं शती ई.पू. तक माना है, किन्तु संस्कृत की वास्तविक उन्नति मौर्यकाल के अन्त में प्रारम्भ करके नवीं शती-दशवीं शती तक बराबर होती रही है। उस वक्त तक संस्कृत शिक्षा और शासन दोनों का माध्यम बन चुकी थी। जितना उपयोगी, धार्मिक, दार्शनिक, लौकिक एवं ललित साहित्य संस्कृत में लिखा गया, उतना कई शताब्दियों तक संसार की किसी भाषा में नहीं लिखा गया। संस्कृत सारे देश की समन्वय-शक्ति बनकर उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सर्वत्र छा गई। दक्षिण में दविण प्रदेश पर भी इसका प्रभाव स्वीकृत था, बल्कि संस्कृत के बहुत बड़े-बड़े विद्वान आचार्य-शंकर, सायण, महव, निम्बार्क, बल्लभ आदि दक्षिण में ही हुए जिन बौद्धों और जैनों ने संस्कृत की विचारधारा से विद्रोह करते हुए जनभाषाओं को प्रश्रय दिया, उन्हें आगे चलकर संस्कृत को अपना पड़ा। एक बहुत बड़े बौद्ध साहित्यकार अश्वघोष ने प्राकृत का व्यवहार दुष्टों और गणिकाओं के मुख से कराया है और संस्कृत का भद्र, शिष्ट एवं उच्च वर्ग से। संस्कृत की यह स्थिति राजपूत-काल तक के साहित्य और समाज में पाई जाती है। धर्म और राज्य-शासन में संस्कृत की सत्ता युग-युग तक बनी रही है। मुगलकाल में भी राजस्थान या रीवाँ में शासन कार्यों के लिए संस्कृत का प्रयोग होता रहा है, भले ही वह संस्कृत शुद्ध और समर्थ नहीं रह गई थी। इसी प्रकार धर्म-कार्यों में भी संस्कृत को मान्यता प्राप्त रही है और इसके बिना कोई संस्कार, कोई उत्सव, पर्व, व्रत या त्योहार ठीक रीति से सम्पन्न नहीं माना जाता था। जर्मन विद्वान श्लेगल के अनुसार संसार की भाषाओं में कोई भी भाषा इतनी पूर्ण और उन्नत नहीं है, जितनी कि संस्कृत भाषा।

अतः पालि-प्राकृत और आधुनिक भाषाओं को यदि बार-बार संस्कृत का आश्रय लेना पड़ा है, विशेषतः ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए।

हिन्दी के विद्यार्थी को जिस वर्णमाला से परिचित कराया जाता है, वह वास्तव में प्राचीन आर्य भाषा की है, हिन्दी की नहीं। वैदिक में गीतात्मक स्वराकांत और बलात्मक स्वराकांत दोनों थे, किन्तु संस्कृत में

केवल बालाकात रह गया। सराघात भोजपुरी आदि बोलियों में शेष है। सन्धि और समास वैदिक में तो प्रायः दो शब्दों के होते थे और वे भी इच्छाधीन थे, परन्तु संस्कृत में यह प्रकृति इतनी बढ़ी कि 10-10, 15-15 और इससे भी अधिक पंक्तियों का एक सन्धि-समास-युक्त पद बनने लगा।

मगध-सम्राट अशोक के पुत्र महाराज कुमार महेन्द्र ने पाली साहित्य ले जाकर सिंहल में शेरवाद का प्रचार किया था, अतः वहाँ के बौद्धों की यह धारणा है कि पाली मगध की भाषा है। "पाटलि" शब्द से पाली की व्युत्पत्ति बतानेवाले मैक्समूलर आदि विद्वान भी यहीं कहते हैं। किन्तु मागधी के जो लक्षण प्राकृत वैयाकरणों ने बताये हैं और अशोक के पूर्वोक्त अभिलेखों में मागधी का जो रूप मिलता है, वह पाली से भिन्न है। यह भाषा अशोक के गिरनार शिलालेख की भाषा से मिलती है, अतः यह पूर्व की भाषा नहीं है। विद्वानों ने मथुरा और उज्जैन के बीच के प्रदेश को इसका क्षेत्र माना है। अशोक के मात्र अभिलेख से स्पष्ट है कि बौद्ध साहित्य का मूल प्राच्य रूप भिन्न था। जिन जन भाषाओं में उस साहित्य का अनुवाद हुआ था, उसमें पालि इसलिए सुरक्षित रह सकी कि महाराज कुमार महेन्द्र त्रिपिटक को ले जाकर लंका में छोड़ आये थे।

हिन्दी साहित्य के आदि युग में भाषा सम्बन्धी जो प्रयोग किये गये थे उसे सफलतापूर्वक आगे नहीं बढ़ाया गया। मध्ययुग में भाषा की अपने-अपने प्रदेश में विशिष्टता स्पष्ट होने लगी। पूर्वी हिन्दी से अवधी और मैथिली, राजस्थानी से मरुभाषा, पिंगल से ब्रजभाषा, खुशरो आदि की भाषा से खड़ी बोली हिन्दी, और गोरख, नामदेव आदि की मिली-जुली बोलियों वाली भाषा से कबीर आदि सन्तों की सधुक्कड़ी भाषा का विकास हुआ जिसमें पश्चिमी हिन्दी का ही बाहुल्य था।

पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत विद्यापति की वह साहित्यिक परम्परा बहुत आगे नहीं जा सकी जो अपने में विशाल भारतीय संस्कृति का समायोजन करने के लिए व्यापक रूप ग्रहण करना चाह रही थी। धीरे-धीरे क्षेत्रीय संस्कृति के लिए मिथिल प्रदेशों में मैथिली को माध्यम बनाया जाने लगा। दूसरी हिन्दी बोलियों से सम्पर्क और आदान-प्रदान छूट जाने के कारण मैथिली साहित्य लोक साहित्य की कोटि में गिना जाने लगा। यह साहित्य अत्यन्त समृद्ध है, किन्तु हिन्दी भाषा के विकास में, अपने अलग-अलग रूप के कारण इसका कोई विशेष योगदान नहीं है। साहित्यिक दृष्टि से पूर्वी हिन्दी की एक दूसरी बोली, अवधी अधिक महत्वपूर्ण रही है। भाटों के माध्यम से पूर्वी प्रदेश में अवधी का सम्मिश्रण हुआ। साहित्यिक अवधी का विकास इसी मध्ययुग में हुआ था। मलूकदास, धरनीदास, जगजीवन, दूलन आदि संतों की भाषा में अवधी का पुट तो है, किन्तु वह सामान्यतः इस युग की वहीं हिन्दी है, जिसे सधुक्कड़ी कहा गया है। इस काल में अवधी के तीन रूप निखर कर आये। मलिक मुहम्मद जायसी, कुतबन, मंझन, आलम, नूर मुहम्मद, निसार आदि सूफिरातों की ठेठ अवधी जिसमें अरबी-फारसी के प्रचलित शब्द और मुहावरे बड़े स्वाभाविक रूप से सम्मिलित किये गये हैं।

पुहकर, नरपति व्यास, गोवर्धनदास, दुखहरन आदि प्रमाख्यानकार हिन्दू कवियों की पश्चिमी परम्परा से सम्पृक्त अवधी जिसमें अपभ्रंश का क्षीण होता हुआ और संस्कृत का बढ़ता हुआ प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है, और 3-गोस्वामी तुलसीदास, आतरास लालदास आदि रामकवियों की साहित्यिक अवधी जो अपनी प्रांजलता और सुन्दरता के कारण तत्कालीन ब्रजभाषा से बराबरी कर सकती है। सुफी काव्य परम्परा तो इस युग के बाद भी चलती रही है, किन्तु उसे हम लोक साहित्य में ही स्थान दे सकते हैं। साहित्यिक

अवधी की धारा गोस्वामी तुलसीदास के बाद धीरे-धीरे क्षीण होती गई और रीति-काल के उत्थान के कुछ पहले ही अवधी मात्र लोक भाषा बनकर रह गई।

खड़ी बोली हिन्दी के दो रूप हो गये-दक्खिनी हिन्दी ओर उत्तरी हिन्दी। आरम्भ से ही दक्खिनी हिन्दी इस्लाम के प्रचारकों के हाथ में पलने लगी थी। दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्र से जाकर दक्षिण में बसने वाले हिन्दी भाषियों में शत प्रतिशत लोग मुसलमान थे और उनके साहित्य का विषय प्रधानतः धर्म था। अतः अरबी-फारसी शब्दावली का प्राधान्य स्वाभाविक था। उत्तर में बहुत से मुसलमान कवि इस युग में हुए हैं जो दक्खिनी हिन्दी की शैली में लिखते रहे हैं। इस्लाम के साथ इसका सम्बन्ध हो जाने के कारण, हिन्दुओं ने इस बोली को अपनी संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बनाया। उत्तर में दिल्ली के दरबार में फारसी की धाक थी। दरबारी कवि या तो फारसी में लिखते थे या ब्रजभाषा में 13वीं शताब्दी में बली के दिल्ली आने पर उत्तर में भी फारसी निष्ठ हिन्दी का प्रचार बढ़ा। अब वह वर्गीय बोली बनने लगी जिसका नाम उर्दू पड़ा। जिस खड़ी बोली को खुशरो ने उठाया था, उसका प्रभाव तो सब बोलियों में बना रहा और गंगा भाट, जटमल, प्राणनाथ आदि लेखकों ने इसको अपनी कृतियों का माध्यम भी बनाया, किन्तु खड़ी बोली प्रदेश में कोई सांस्कृतिक या धार्मिक केन्द्र न होने के कारण और राजधानी के कुछ काल के लिए आगरा बदल जाने के कारण खड़ी बोली साहित्य की धारा लुप्त हो गई।

कबीरदास बनारस के थे, दादू राजस्थान के और नानक पश्चिमी पंजाब के रहने वाले थे, किन्तु इन सबकी भाषा का स्वरूप बहुत कुछ एक-सा है। सामान्यतः वह भाषा खड़ी बोली है और साथ में ब्रजभाषा के प्रयोग भी प्राप्त होते हैं, यद्यपि कबीरदास की भाषा में पूर्वीपन, दादू की भाषा में राजस्थानीपन और नानक की वाणी में पंजाबीपन अवश्य है। खड़ी बोली के सर्वनामों के साथ ब्रजभाषा के क्रियारूप और ब्रजभाषा के सर्वनामों के साथ खड़ी बोली के क्रियारूप सहज रूप में आ गये हैं। यह भाषा किसी क्षेत्र-विशेष की नहीं, बल्कि हिन्दी प्रदेश की तत्कालीन सामान्य भाषा है। इसे ही लोगों ने सधुक्कड़ी, "खिचड़ी", "पंचसनि" भाषा कहा है। सिखों के "आदिग्रन्थ" में संगृहीत पीपी, रैदास, धेन्ना, गुरु अंगद, गुरु अर्जुनदेव आदि की भाषा का आधारभूत स्वरूप यही है। प्रायः संतों की भाषा में अपनी-अपनी मातृभाषा का पुट रहता ही है। कबीर के अतिरिक्त रैदास, गुलाल, भीखा, शिवनारायण आदि की रचनाओं में भोजपुरी, मलूकदास, जगजीवन, दूलन आदि की भाषा में अवधी, नानक के अतिरिक्त फरीद, गरीबदास और सिख गुरुओं की वाणियों में पंजाबी, दादू, रज्जब, सुन्दरदास, बसना आदि के राजस्थानी यारी बावरी आदि में ब्रजभाषा का अनुपात कुछ अधिक अवश्य है, किन्तु सामान्यतः सभी संतों की भाषा में सभी प्रदेशों के शब्द और प्रयोग मिल जाते हैं। ये लोग भारत की सर्व सामान्य, सर्वमान्य भाषा का निर्माण कर रहे थे। इसी उद्देश्य से इन्होंने फारसी और संस्कृत शब्दों से भी यथोचित आवश्यकतानुसार काम लिया। इनमें अधिक संख्या ऐसे संतों की थी जो अनपढ़ या कम पढ़े थे। अतः इनकी भाषा जनभाषा के निकट थी। इसमें अक्खड़पन भी था और तीव्रता भी।

हिन्दी का सबसे अधिक व्यापक, सुन्दर और सुसंस्कृत रूप वह है जिसे पिछले युग में पिंगल और इस युग में "मारवा" और ब्रजभाषा कहा गया। कबीर की रमैनी पर ब्रजभाषा का अधिक प्रभाव है। रविदास के कई पद शुद्ध ब्रजभाषा में हैं। दादू, नानक आदि संतों की वाणी से ऐसी सैकड़ों पंक्तियाँ उद्धृत

की जा सकती हैं, जिनमें ब्रजभाषा है। तुलसी ने साहित्यिक अवधी में अपना महाकाव्य तो लिखा, किन्तु उन्हें भी ब्रजभाषा का महत्व स्वीकार करके "विनय पत्रिका", कवितावली और कृष्ण-गीतावली में समुचित स्थान देना पड़ा। जायसी आदि ठेठ अवधी के कवि भी ब्रजभाषा के प्रभाव से बचे हुए नहीं हैं। दक्खिन के कवियों को छोड़कर हिन्दी प्रदेश की सभी क्षेत्रीय भाषाओं पर ब्रजभाषा का व्यापक प्रभाव रहा है। कृष्ण-काव्य तो विशुद्ध ब्रजभाषा में है। सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछाप के कवियों ने ब्रज की बोली का परिष्कार करके और उसे साहित्यिक परम्परा के साथ जोड़कर एक सांस्कृतिक धरातल पर लाकर भाषा का रूप दिया। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक मैथिली, अवधी, राजस्थानी एवं हिन्दवी (दक्खिनी और खड़ी बोली) सब अपने-अपने क्षेत्र में सिकुड़कर रह गई, बल्कि इन क्षेत्रों की काव्य-भाषा, ब्रजभाषा ही हो गई। केशव, रसखान, सेनापति, बिहारी, मतिराम, देव, दास, रसलीन, धनानन्द आदि कवियों ने इसे कोमल-कांत अलंकृत सरस, भावमयी और प्रौढ़ तो बना दिया और भूषण, रसलीन आदि ने वीर रस में इसका प्रयोग करके इसको श्रृंगारी गर्त से निकालने की चेष्टा भी की, किन्तु सामान्य रूप से ब्रजभाषा सामाजिक चेतना की नहीं, सामन्ती विलास की भाषा बनी रही गई।

लौकिक साहित्य में ग्वालभ, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमफल आदि की भाषा में ब्रजभाषा और खड़ी बोली के मिश्रित प्रयोग बहुधा प्राप्त होते हैं। ये सभी कवि ब्रजभाषा में भी लिखते थे और खड़ी बोली में भी। भारतेन्दु-युग के सब कवि गद्यकार भी थे और गद्यकार गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग करते थे।

खड़ी बोली को फिर से हिन्दी साहित्य में लाने का श्रेय इस युग में अंग्रेजी को दिया जाना चाहिए। साहित्य की भाषा तो ब्रजभाषा थी, किन्तु जन-साधारण के दैनंदिन कार्य की भाषा खड़ी बोली ही थी। नवागंतुक अंग्रेज भी नित्य के व्यवहार की भाषा से परिचित होते थे। ब्रजभाषा से नहीं। अतः इन लोगों ने खड़ी बोली को ही प्रोत्साहित किया। इस संदर्भ में श्रीरामपुर मिशन और फोट विलियम कॉलेज उल्लेखनीय है। ईसाई मिशनरियों ने बाइबिल की पुस्तकों से अनुवाद और प्रचारात्मक ग्रन्थ प्रकाशित किये।

जान गिलक्रिष्ट की अध्यक्षता में फोर्ट विलियम कॉलेज के चार लेखकों ने खड़ी बोली की अनेक शैलियों की नींव रखी। इशा अल्ला खाँ ने उस रूप की स्थापना करनी चाही जिसे बाद में हिन्दुस्तानी कहा गया। जिसमें हिन्दी छूट और न किसी बोली का मेल है न सामंजस्य। भारतीयों के लिए अरबी-फारसी को पचा पाना बहुत कठिन रहा है। इसी कारण से उर्दू हिन्दी से अलग हुई। उर्दू भारतीय संस्कृति की भाषा नहीं हो पाई फिर भी जो अरबी-फारसी शब्द जनता में प्रचलित रहे हैं, उनको आवश्यकतानुसार हिन्दी साहित्य में बराबर प्रयुक्त किया जाता रहा है। हिन्दी की यह उदारता है कि उसने सैकड़ों ऐसे शब्दों को खपा लिया है, वरना उर्दू में एक भी संस्कृत शब्द मान्य नहीं हो पाया। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से, विशेषतः 13वीं शती से हमें विदेशी शब्द मिलने लगते हैं। चारणों, संतों, सूफियों और यहाँ तक कि रामभक्तों के काव्य में इनका प्रचुर प्रयोग मिलता है। आश्चर्य की बात है कि रीतिकाल में इनकी संख्या कम है। इसका कारण यह जान पड़ता है कि आरम्भ से ही कृष्ण-काव्य में (अर्थात् ब्रजभाषा में) इनका प्रयोग संकुचित रहा है। खड़ी बोली के उत्थान के साथ फिर इनका अनुपात बढ़ा क्योंकि बहुत से साहित्यकार उर्दूगान भी थे। छायावादी युग में यह अनुपात घट गया, किन्तु प्रयोगवादी साहित्यकार में इसकी पुनः वृद्धि हुई और आज के व्यक्तिवादी युग में बहुत से साहित्यकार ऐसे हैं जिनकी भाषा में अरबी-फारसी शब्द प्रचुर मात्रा में होते हैं। सामान्यतः कथा-साहित्य में, गद्य और पद्य में, हास्य-व्यंग्य के प्रसंगों में, देशकाल-पात्र की अनुकूलता के कारण भी ऐसे शब्द अधिक प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत का प्रभाव क्रमशः

बढ़ता ही गया और आज यह स्थिति है कि 80 प्रतिशत संस्कृत का शब्द भण्डार हिन्दी शब्दकोश में आ गया है। हिन्दी का साहित्यिक विकास उसकी संस्कृतनिष्ठा के साथ जुड़ा हुआ है। पिंगल में डिङल की अपेक्षा और "सधुक्कड़ी" में पिंगल की अपेक्षा अधिक संस्कृत शब्द हैं। संतमत के संस्थापकों-कबीर, दादू, नानक-में तत्सम शब्द कम हैं, किन्तु बाद में बढ़ते रहे हैं। सुन्दरदास में सबसे अधिक हैं। सूरदास आदि ने प्रायः संस्कृत शब्दों को लेकर उन्हें तद्भव रूप दिया, तुलसी ने तद्भव और तत्सम दोनों रूपों को ग्रहण किया। रीतिकाल में कृष्ण-कवियों की तद्भव प्रधान परम्परा चलती रही। खड़ी बोली काल में आरम्भ से ही दो वर्ग रहे हैं-प्रधानता सदा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी की रहती आयी है। छायावादी युग में संस्कृत शब्दों का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है, किन्तु प्रगतिवादियों ने अपनी भाषा को जनभाषा के निकट रखने की चेष्टा में तत्सम तत्व को कम कर दिया। आज साहित्य के बौद्धिकतार्थ आग्रह के कारण संस्कृत शब्द-भण्डार की प्रधानता अनिवार्य हो गई है, बल्कि संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही परिनिष्ठित हिन्दी मानी जाती है। ब्रजभाषा साहित्य में ब्रजभूमि के बाहर के और खड़ी बोली साहित्य में कुरु-प्रदेश के बाहर के लोगों के संस्कृत का अधिक आश्रय लिया है। ठेठ ब्रजभाषा या खड़ी बोली से गहरा परिचय न होने के कारण उन्हें संस्कृत शब्दावली द्वारा अपने साहित्य को व्यापक और विस्तृत बनाना अभीष्ट रहा है। अंग्रेजी का प्रभाव राजा शिव प्रसाद और राणा लक्ष्मण सिंह के समय से दृष्टिगोचर होता है। भारतेन्दु-युग में नये विषयों के लिए बहुत कुछ प्रेरणा अंग्रेजी से मिलती थी। भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि ने तो अंग्रेजी के तत्सम शब्दों तक का प्रयोग किया और वह भी रोमन लिपि में। कभी-कभी अंग्रेजी शब्द के साथ कोष्ठक में हिन्दी शब्द दे दिया गया और आगे चलकर अंग्रेजी का मात्र हिन्दी पर्याय प्रयुक्त होता रहा। यह शैली द्विवेदी-युग में जारी रही। पूर्वी हिन्दी में से मैथिली सीमित क्षेत्र में और अवधी कुछ व्यापक साहित्यिक स्तर तक विकसित हुई, किन्तु इस काल के अन्त तक दोनों की स्थिति लोकभाषा की-सी हो गई। वस्तुतः हिन्दी के सामने कोई ऐसी समस्याएँ नहीं हैं जिसके चलते उसकी प्रगति में बाधा हो। प्रत्येक भाषा की प्रकृति किसी भी दूसरी भाषा से भिन्न हुआ करती है, इसलिए एक समाज के लोगों को दूसरी भाषाओं में विचित्रता लगने लगती है। हिन्दी लिंग-वचन की जो विलोपता एक बंगाली के लिए कठिनाई बन गई है, वहीं पंजाबी, गुजराती और मराठी बोलनेवालों के लिए उसका सरलतम गुण है। समस्या हिन्दी में नहीं, हिन्दी के विरोधियों की भावना में है। कठिनाई अज्ञान के कारण है। अभ्यास से हमने जैसे अंग्रेजी और संस्कृत की कठिनाइयों को पचा लिया है, वैसे ही अहिन्दी भाषी हिन्दी को एक-दो विशेषताओं को आत्मसात कर लिया करते हैं। हिन्दी वह भाषा है जिसे मजदूर और बच्चे भी बोलते हैं, जिसमें सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है और जिसमें उच्चतम वैज्ञानिक और पारिभाषिक साहित्य भी लिखा जाता है।

हिन्दी की लिपि, इसका उच्चारण, इसका भण्डार और इसका व्याकरण भारत की अन्य भाषाओं से सरल है। इसका प्रमाण इतना ही पर्याप्त है कि हिन्दी सारे भारत में व्याप्त है। विदेश से जितने लोग आते हैं, चाहे वे किसी प्रदेश में रहें, सर्वप्रथम हिन्दी से परिचित हो जाते हैं और उसे आसानी से सीख लेते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दी साहित्य का विकास उत्तरोत्तर होता जा रहा है। इसमें विराम नाम की कोई चीज नहीं है।

...

सारे मानव समाज को सुन्दर बनाने की साधना का ही नाम साहित्य है।

- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी



मंदिर की शादी

श्री राम सुभग राम

वरिष्ठ लेखाकार

शादी, लड़का-लड़की यानी दो आत्माओं का मिलन के साथ-साथ दो अपरिचित परिवार का मधुर सम्बन्ध बनाना होता है। लड़के वाले पूरे बाजा-गाजा के साथ लड़की वाले के घर जाते हैं। लड़की के पूरे परिवार अपने द्वार की शोभा देखकर आनन्द विभोर हो जाते हैं। इतना ही नहीं, पूरे गाँव/मुहल्ला के लोग द्वार की शोभा देखकर, बारात के नाच गाने देख कर आनन्दित होते हैं।

पर आज देखने में आता है कि तिलक के बचाव के लिए, कम खर्च के नाम पर बड़े-बड़े लोग अपने द्वार की शोभा को तिलांजलि देकर लड़का-लड़की की शादी मंदिर में कर रहे हैं। समाज को कम खर्च करने की सलाह देते हैं। पर बात वैसी नहीं है। उनकी कथनी और करनी में हाथी के दो तरह के दाँत (खाने और दिखाने) की तरह अन्तर होता है।

मैं अपने एक दोस्त के साथ, उसके साले की शादी में खगड़िया से देवघर गया था। मेरे दोस्त के साले की बारात झुमरी तिलैया से देवघर मंदिर में शादी कराने आयी थी। लड़की पक्ष वाले कोडरमा से आये थे। दोनों पार्टियाँ (बाराती एवं सराती) एक धर्मशाला में दो-दो कमरे लेकर ठहरे थे। एक कमरे में प्यारे लाल जी (लड़की के पिता), लड़की, उसकी माँ, बहन, बुआ एवं अन्य औरतें ठहरी थीं एवं दूसरे कमरे में मर्दों की व्यवस्था थी। वैसी ही व्यवस्था श्री श्रीकान्त जी (लड़के के पिता) की थी। प्रत्येक कमरा 500/- रुपये के दर से 24 घंटों के लिए बुक कराया गया था।

बाराती एवं सराती की औरतें अपने-अपने कमरे में बैठ कर सगुन के गीत गा रही थी। उन लोगों को सोने को कौन कहे, पैर फैला कर बैठने की जगह नहीं थी। किसी प्रकार रात बीत जाय, शादी हो जाय, यही शायद सोच कर गीत गाती, हंसी मजाक करतीं नजर आ रही थीं।

उधर श्रीकान्त जी का मझिला दामाद जो विद्युत विभाग में कनिष्ठ अभियन्ता है शादी होने वाले अपने साले को लेकर, धर्मशाला से एकमील दूर पर एक होटल में रुका हुआ था। रात्रि के नौ बज रहा था। हमलोगों ने शादी में विलम्ब का कारण जानना चाहा। पता चला कि तिलक में कमी की पूर्ति हेतु श्रीकान्त जी का दामाद अपने साले (दुल्हा) को रोक कर अलग रखे हैं और तब तक तिलक की पूर्ति लड़की वाले नहीं करेंगे, लड़का शादी करने नहीं जायेगा। हमलोगों ने प्यारे लाल जी से भेंट की एवं समस्या का समाधान करना चाहा। वे रो-रो कर कहने लगे कि तिलक एक लाख का करार था, जिसमें नब्बे हजार दे चुके हैं। मात्र दस हजार बाकी रकम को मैंने शादी के पूर्व देने का वायदा अवश्य किया था, पर साहब के नहीं रहने के कारण जी.पी.एफ. फण्ड की निकासी नहीं हो सकी। (प्यारे लाल जी वन विभाग में एक सहायक के पद पर हैं) जिसके चलते वे वादा पूरा नहीं कर सके। अगर लोग (लड़का वाले) चाहें तो मैं औरतों के गहने उन लोगों के पास बंधक रख सकता हूँ। पैसा देकर वापस ले लूँगा। आप लोग हमलोगों की मदद करें। बारात बगैर शादी के वापसी पर बहुत बेइज्जती होगी।

हमलोग दोनो दोस्त लड़का के बहनोई इंजिनियर के पास होटल गये एवं प्यारे लाल जी के प्रस्ताव को रखा। वे झट तैयार हो गये। इंजिनियर साहब हमलोगों के साथ धर्मशाला आये। प्यारे लाल जी कमरे में ठहरी औरतों से रो-रो कर गहना बंधक रखने हेतु माँगे और सात औरतें झट-झट अपने-अपने गहने निकाल कर देने लगीं। कोई गले की सिकरी, कोई कान का कनफुल, कोई हाथ का कंगन निकाल कर दनादन देने लगी। प्यारे लाल जी ने रूमाल में गहने लपेटकर इंजिनियर को दिये और वे गहनों की गिनती कर रूमाल में बांध कर होटल के लिए रवाना हो गये। औरतों का गहना उतारने, प्यारे लाल जी द्वारा बंधक रखने एवं इंजीनियर द्वारा बंधक स्वीकार करने का दृश्य देख कर मेरे मुँह से निकला कि "यह दूसरा साईलक है।" कुछ देर बाद दुल्हा राजा को लेकर इंजीनियर

धर्मशाला पहुँचे । उस समय रात के 10.30 बज रहा था । दोनों पक्ष धर्मशाला के कमरे बंद कर पास के मंदिर पहुँचे । मंदिर के द्वार पर 45-45 रुपये देकर पंजीकृत कराया गया । मंदिर में शादी की पूरी विधि मात्र 25 से 30 मिनट में हो गयी । पंडित जी ने शादी कराकर दोनों पक्षों से दक्षिणा ली और दोनों पक्षों को धर्मशाला जाने को कहा । उस समय 11.00 बज रहा था । दोनों पक्ष धर्मशाला पहुँचे ।

धर्मशाला के आंगन में खाने की अच्छी व्यवस्था की गई थी । अपना सिर ऊँचा करने हेतु प्यारे लाल जी ने बुफे सिस्टम का प्रबन्ध किया था । खाने का सारा सामान टेबुल पर रखा था । खाली प्लेट एक जगह रखे थे । प्रत्येक व्यक्ति द्वारा प्लेट लेकर, लाईन में लग कर अपने मन पसन्द पोलाव, सब्जियाँ, मुर्गा, मिठाई आदि, अपने इच्छानुसार लेकर खड़े-खड़े खाने की व्यवस्था की गई थी । पर खाने के समक्ष भीड़ न हो इसके लिए प्रत्येक सामान के साथ एक-लड़का खड़ा था । लोग प्लेट लेकर उसके सामने जाते और वह एक चम्मच अपने सामान कर प्लेट में दे देता और लोग आगे बढ़ते एवं दूसरे के पास पहुँचते । वह भी वैसा ही करता और आगे बढ़ने को कहता । सारे टेबुल भ्रमण कर व्यक्ति अपना खाना खड़े-खड़े खाने लगते ।

एक औरत दूसरी औरत से बोली-चलो प्लेट उठाया जाय एवं खाना खा लिया जाय । यह बुफे सिस्टम है । खाना घट जानेपर उपवास करना पड़ सकता है । इस पर दूसरी बोली-तुम्हें इसे भिखमंगा सिस्टम कहते हुए लाज लगती है । खाना भिखमंगा की तरह खाली प्लेट लेकर दरवाजा-दरवाजा खाने की याचना करो । लोगों को लाईन में खड़ा देखकर तो यही लगता है मानों खैरात बंट रहा हो । मैं नहीं जाती लाइन लगने । क्या जमाना आ गया है । हमलोग देहात में बारातियों को इज्जत से बैठाकर खाना खिलाते हैं । लड़के वालों के स्वागत में थोड़ी कमी होने पर समझी एवं बाराती रूठ जाते हैं और उनको खिलाने के लिए आग्रह करना पड़ता है । यहाँ तो लड़का के पिता-माता, बहन सभी खाली प्लेट लिए लड़की वालों के साथ भीखमंगा की तरह खाने की लाईन में खड़े हैं । बाराती और सराती में कोई अन्तर नहीं है । इसी बीच एक औरत भीड़ को चीरती हुई, अपना भरा प्लेट उपर उठाये आती है । उसके गाल पर चटनी और दही का छींटा पड़ा है जो उसके भरे प्लेट से गिरा है । अपने खाने के प्लेट लेकर जमीन पर बैठ जाती है और दूसरी औरत से पूछती है कि क्या यही खिचड़ी खाना "बुफे सिस्टम" कहलाता है ? धर्मशाला में उठे दूसरे लोग उचक-उचक कर सुन्दर, चंचल, सजी-धजी युवतियों को देखते हैं । एक ने शायर के अन्दाज में कहा -

"तितलियों से कह दो, महफील सजाना छोड़ दें, अपने हिन्दुस्तान को इंग्लिस्तान बनाना छोड़ दें ।"

हम दोनों दोस्त जमीन पर बैठकर सब सुन रहे थे और नजारा देख रहे थे । हमलोगों के लिए चर्चा का विषय केवल दुल्हा के बहनोई इंजिनियर साहब थे । इन्सान पैसा के लिए गिर कर कितना निर्लज्ज और शैतान बन सकता है । जो दूसरों की मजबूरी नहीं समझता वह अपना कैसे हो सकता है । वैसी शादी जिसमें बाजा का भी प्रबन्ध नहीं, जो मात्र 25-30 मिनट में समाप्त हो जाय, जिसमें लड़का-लड़की का अग्नि का फेरा न लगे, वहीं है मंदिर की शादी ? क्या मात्र तिलक लेकर पैसा जमा करना ही मंदिर की शादी है ? तिलक लड़का-लड़की के जीवन-बंधन में चार चाँद लगाने हेतु दिया जाता है ।

हमलोगों ने खाना नहीं खाया और हमलोग धर्मशाला के बरामदे में सो गये और सुबह गाड़ी पकड़कर खगड़िया वापस आ गये ।

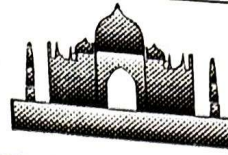
हमलोगों ने यही देखा एवं समझा कि मंदिर की शादी केवल दिखावा है, छलावा है । समाज को धोखा में रख कर धन इकट्ठा करने का साधन है ।

लड़की रूपवती है, गुणशीला है, चतुर है, कुलीन है, तो हुआ करे, दहेज हो तो सारे दोष गुण हैं । प्राणों का कोई मूल्य नहीं, केवल दहेज का मूल्य है ।

- प्रेमचन्द

गुलामी की दस्तक

श्री राम प्रताप सिंह, 'मधुप'
वरिष्ठ लेखाकार



देख सका न ताजमहल

श्री अखिलेश्वर नारायण लाल दास
वरिष्ठ लेखाकार

चाहे नजदीक-पास
या कि कहीं दूर-दराज
चारों ओर बस दहशत ही दहशत ।
मेरी सारी आस्थाओं,
सारे विश्वासों को मिटाकर
बढ़ती ही जाती है-
गुलामी की मैली-सी चादर ।
देख रहा टुकुर-टुकुर
वृक्षों की छायाएं,
नदियों का पानी,
बहती हवाएं,
सब कुछ प्रदूषित और कलुषित
जैसे, हमारा मन,
हमारा जीवन ।
यानी कि, बीसवीं सदी की शाम की
बौरायी हुई मानव-संस्कृति
आत्महत्या करने को विवश किसान,
दिशाहारा छात्र-युवा,
लाचार कामगार,
टूटते नाते-रिश्ते,
बिखरते भाईचारे,
विकृत परिभाषा,
टूटी अभिलाषा,
जिधर देखो उधर-
केवल हताशा-हताशा
और सब कुछ देखता, झेलता, सहता
हमारे समय का समाज ।
सुनो, सुनो-
दस्तक दे रही है गुलामी ।

बचपन से सपना संजोये
बैठा था मैं आस लगाये
मम्मी-पापा के साथ चलेंगे
शहर आगरा घूम सकेंगे
और देख सकेंगे ताजमहल
पर देख सका ना ताजमहल ।

शाहजहाँ की प्रेम-निशानी
मुमताज बेगम की अमर कहानी
इतिहास के पन्नों पर चर्चित
दुनियाँ का सातवाँ आश्चर्य
और मेरे सपनों का हवामहल
पर देख सका ना ताजमहल ।

कैसे एक संयोग बना था,
एल.टी.सी. का योग लगा था,
प्रियतम मेरे साथ चली थी
उसकी भी चाहत वही थी

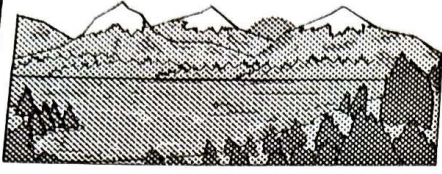
सोचा अहले शाम पहुंचकर
देखेंगे उसको जी भरकर
अफसोस ! बन्द हो चुका था
मेरे पहुंचने से पहले ही

संगेमरमर का वह शानोमहल
और मैं देख सका ना ताजमहल ।।

• • •

गुलामी दुनिया का सबसे घृणित पाप है ।
— सुभाषचन्द्र बोस

निराला काव्य: प्रकृति की रंगस्थली



डॉ. जितेन्द्र कुमार

अनुभाग अधिकारी, हिन्दी कक्ष

सृष्टि के आविर्भाव से प्रकृति मनुष्य की संगिनी रही है। विज्ञान के विकास से बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी इमारतों में रहने वाला मनुष्य भी अपने घरों में नकली फूलों और गुलदस्तों के माध्यम से अपने को प्रकृति के साहचर्य में रखना चाहता है। साहित्य को प्रकृति की अनुकृति कहा गया है। साहित्य का रचयिता मनुष्य प्रकृति के सौन्दर्य को, इसमें होने वाले कार्य व्यापारों को नाना प्रकार से चित्रित करने का प्रयत्न करता है।

मनुष्यों में सबसे संवेदनशील होते हैं 'कवि' जो प्रकृति के नित नूतन रूप का वर्णन करके उससे प्राप्त होने वाले आनंद को व्यक्त करते हैं।

महाकवि निराला एक ऐसे कवि हैं जिनका काव्य विविधता, रोचकता, तत्त्वमयता का सफल समन्वय है। वे जितने उदात्त थे उतने ही सहृदय एवं करुणापूर्ण भी। उसपर मेदिनीपुर के महिषादल की प्रकृति की उर्वरा भूमि में ही निराला की कल्पना ने जन्म लिया ऐसे में महाकवि निराला के काव्य में भावों की अभिव्यंजना अधिकांशतः प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। यहाँ तक कि कवि का विद्रोहात्मक स्वर भी इसी के माध्यम से फूटा है। प्रकृति ही उनके काव्य को सत्यम्, शिवम् से सुन्दरम् की ओर ले जाती है। वह कहीं उनकी सहचरी है, कहीं प्रेयसी, कहीं वह माँ है तो कहीं पत्नी, कहीं उपदेशिका के रूप में है तो कहीं दूतिका, कहीं अभिसारिका है तो कहीं रक्षिका। प्रकृति का प्रांजल सौन्दर्य कवि को इतना अभिभूत कर देता है कि प्रकृति उसके लिए मात्र अचेतन सत्ता न रहकर उसका सर्वस्व बन जाती है।

निराला का प्रकृति-चित्रण विशेष रूप से ऋतु-वर्णन प्रतीक-विधान एवं अलंकरण के रूप में देखने को मिलता है।

“सोती थी सुहाग भरी, स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनुतरुणी जुही की कली
दृग बंद किए शिथिल पत्रांक में।”

पत्ते की गोद में सोई यह जुही की कली हिन्दी काव्य में प्रथम बार सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना का प्रतिनिधित्व कर रही है।

निराला की “संध्यासुन्दरी” अंबरपथ से किस प्रकार धरती की ओर मौन एवं शान्त भाव से चली आ रही है :-

“दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे
तिमिरांचल में चंचलता का कहीं नहीं आभास
मधुर-मधुर दोनो उसके अधर
किन्तु जरा गंभीर, नहीं है उसमें हास-विलास।”

इस कविता में मानवीकरण का सफल, सशक्त चित्रण रूपक, वीप्सा और उपमाओं के सुन्दर प्रयोग से हुआ है। सुन्दरी (संध्या) की संपूर्ण भावनाओं और उसकी शारीरिक चेष्टाओं का वर्णन करके कवि ने गतिशील सौन्दर्य की उत्कृष्ट अभिव्यंजना की है।

उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण की परंपरा में निराला की अनेक कविताएँ उदाहरण के योग्य हैं, यथा:- "दूत अलि ऋतुपति के आए", "अलि घिर आए घन पावस के", "घन आए घनश्याम न आए ।" ऐसी ही अनेक कविताओं में एक है राम की शक्ति-पूजा का यह अंश जहाँ अमावस्या की रात्रि की भयावहता राम-रावण-युद्ध में राम एवं उनके साथियों के मन में कुछ देर के लिए भय का संचार कर देता है :-

"हे अमानिशा उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध है पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुधि विणाल
भूधर ज्यों ध्यानमग्न केवल जलती मशाल
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय
रह-रह कर उठता जगजीवन में रावण जय भय ।"

ऋतु-वर्णन प्रकृति-चित्रण की पारंपरिक प्रणाली है। यद्यपि निराला ने लगभग सभी ऋतुओं का वर्णन अपनी विभिन्न रचनाओं में किया है तथापि वर्षा ऋतु एवं उसके बादलों से उनका विशेष मोह है। "परिमल" की उनकी प्रसिद्ध कविता "बादल राग" को भुलाए भी भूला नहीं जा सकता। "आराधना" में भी कई गीत वर्षा वर्णन के मिल जाते हैं :-

"धाए, धाराधार धावन हे,
गगन-गगन गाजे सावन हे ।"

'गीतिका', 'नए पत्ते', 'सांध्यकाकली', 'अनामिका', 'परिमल' आदि सारे संग्रहों में ऋतुवर्णन से संबंधित कविताएँ देखने को मिलती हैं। यही प्रकृति निराला को जीवन का पाठ भी पढ़ा जाती है :-

"ऊँचा रे ! नीचे आता
जीवन भर-भर दे जाता
गाता, वह केवल गाता
बंधु तारना-तरना ।"

इसी प्रकृति के माध्यम से निराला ने अद्वैतदर्शन और अपने अध्यात्म भाव को अनेक कविताओं में प्रकट किया है :-

"तुम तुंग हिमालय श्रृंग
और मैं चंचल गति सुरसरिता
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्त कामिनी कविता ।"

छायावादी कवियों में निराला की इस दृष्टि से भी यह एक विशिष्टता रही है कि उन्होंने प्रकृति के मधुर कोमल रूपों के अतिरिक्त उसकी ओजस्वी आत्मा के भी दर्शन किए हैं। उनकी क्रान्ति भावना को भी यहाँ वाणी मिली। "बादल राग" का बादल जनजीवन में चेतना जगाने का माध्यम बन गया है।

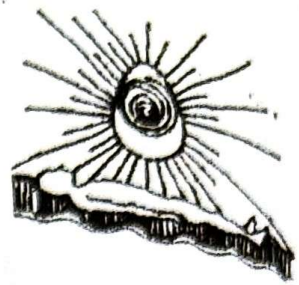
इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला काव्य सर्वत्र प्रकृति की रंगस्थली बना हुआ है। उसमें प्रकृति के नानाविध रूपों एवं कलापों का चित्रण है। लगभग समस्त कविताओं में प्रकृति किसी न किसी रूप में आई ही है।

मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ। यदि तुम कुछ पूछना चाहते हो तो हिन्दी में पूछो, मैं तुम्हें उसमें बातें बता सकूँगा।

- अमीर खुसरो

योग-एक अनुभूति

श्री ओमप्रकाश
अनुभाग अधिकारी



तीस-चालीस वर्षों से योग के बारे में लोग बातें सुनते आ रहे हैं। उसके पहले शायद लोग इसके बारे में अनभिज्ञ थे। इधर लोगों को जानकारी हुई है कि योग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका मनुष्य के शरीर, मन तथा भावनाओं पर गहरा असर पड़ता है। दुनिया में भारत के ही नहीं बल्कि पश्चिम के बड़े-बड़े वैज्ञानिक जिन्होंने मनुष्य की क्षमता चंद्रमा, मंगल, वृहस्पति और शनि के पार ढकेलने की कोशिश की है और जिन्होंने आण्विक एवं न्यूट्रॉन शक्ति तक का आविष्कार किया है, ने भी कहा है कि यदि मनुष्य को उसके विभीषिकामय जीवन से बाहर निकलना है तो मनुष्य के पास योग के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

यही कारण है कि विश्व भर में योग का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है। कम-से-कम एक लाख योग शिक्षक जो पंजीकृत हैं योग शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं। पश्चिम देशों के लोग जो भौतिक सम्पन्नता की चरम-सीमा पर हैं, शान्ति की खोज में भारत का मुंह देख रहे हैं। इसकी झांकी मुझे वर्ष 1993 में पटना और मुंगेर में देखने को मिली। मुंगेर में विश्व योग सम्मेलन आयोजित था। मेरे पिताजी जो सेवा निवृत्त सहायक शिक्षा निदेशक थे, को अक्टूबर 1993 के चतुर्थ सप्ताह में पटना हवाई पट्टी एवं पटना जंक्शन पर विदेशों से आने वाले योगाभ्यासियों की अगुआनी की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। मैं भी उनके साथ उन्हें सहायता पहुंचाने जाता था। मुझे यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि योगा के उच्च कोटि के अभ्यासी एवं विद्वान हजारों की संख्या में पश्चिमी देशों एवं ऑस्ट्रेलिया से आये। मुझे जानकारी मिली कि बत्तीस देशों से बाहर के योगाभ्यासियों ने योग सम्मेलन में भाग लिया। इन योगाभ्यासियों में कुछ ऑस्ट्रेलिया के शरीर विज्ञान के विश्वस्तर के डॉक्टर भी सम्मिलित थे। ये सभी योगा के प्रति निष्ठावान् थे।

चूंकि ये सभी योग को योगा कहते हैं इसलिए भारत में भी योगा लिखने का प्रचलन हो गया है। मेरी पहली अनुभूति योगा की तब हुई जब मेरे पिताजी की एक आँख की रौशनी बिल्कुल ही कम हो गई थी। जब इनके मित्र (विद्यापति वर्मा) वर्तमान में स्वामी प्रज्ञा तीर्थ ने नेति करने की सलाह दी तब मुझे इस पर विश्वास ही नहीं हुआ और मैं उन्हें लेकर नेत्र चिकित्सक के पास गया। चिकित्सक ने कहा कि रौशनी भाग गई है, एक महीने की उन्होंने दवा दी फिर देखने के



लिए बुलाया। मेरे पिता ने नेति क्रिया को नियमित रूप से दोनों शान करना शुरू किया। नेति एक नेति के लौटे से किया जाता है जिसमें टोंटी रहती है। नमकीन सुसुम पानी टोंटी से एक नाक में दिया जाता है और दूसरी नाक से निकल जाता है। इस क्रिया को करते-करते बीस दिन में ही इन्हें आँख से स्पष्ट दिखाई देने लगा। जब चिकित्सक के पास गये तो उन्होंने कहा कि उन्हें उम्मीद नहीं थी कि दवा इतना-प्रभावी होगी। मेरे पिता ने दवा बंद कर दी और नियमित रूप से नेति क्रिया करते रहे जो आजतक जारी है। उनकी आँख शत-प्रतिशत ठीक है और चश्मे का पावर भी घट गया है। इससे प्रभावित होकर मेरे पिताजी ने परम हंस स्वामी सत्यानंद जी से योगा में दीक्षा भी ले ली थी। मुझे भी इस नेति क्रिया से काफी लाभ पहुंचा है। मैंने वर्ष 1995 से नेति क्रिया प्रारंभ की है। मैं बचपन से ही चश्मा लगाता हूँ, किन्तु अब नजदीक का बिना चश्मे का पढ़ सकता हूँ। मेरे पिता ने तीन ऐसे व्यक्तियों का सिर दर्द जो कि साइनोसाइटिस के कारण था उस विधि से दूर कराया है। नेति के इस लोटे को डॉ.ई.एन.टी.भी. कहा जाता है क्योंकि इससे आँख, नाक, कान एवं गले की बीमारियाँ ठीक होती है। माइग्रेन बीमारी का इलाज एकमात्र नेति क्रिया है। यह तो सिर्फ योगा की एक क्रिया है जिसके अनगिनत लाभ हैं। ऐसे अनेकों आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा एवं हठ योग की विधियाँ हैं जिनसे दमा, डायबेटीज, रक्तचाप, गठिया जैसे असाध्य बीमारियों से मुक्ति मिल जाती है। अब तो कैंसर एवं एड्स जैसी बीमारियों से पीड़ित रोगियों पर योगा के उपचार से लाभ दिखाई दे रहा है। योगा न सिर्फ हमारे शारीरिक रोगों से मुक्ति के लिए आवश्यक है, न सिर्फ मानसिक रोगों से निजात दिलाने के लिए आवश्यक है अपितु एक संतुलित एवं सार्थक जीवन जीने के लिए अत्यंत ही उपयोगी है।

...

योग को अगर हम, समाज और विश्व की एक जीवन पद्धति के रूप में अपना लें तो यह हमारे जीवन जीने के तरीके को बदल देगा और जीवन के प्रति एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाने के लिए हमें बाध्य कर देगा।

— परम हंस निरंजनानंद



दुर्भाग्य

श्री नरेन्द्र सिंह 'नाहर'
वरिष्ठ लेखाकार, हिन्दी कक्ष

कमला सामान्य परिवार की एक खूबसूरत नवयुवती थी। जितना सुन्दर वह देखने में थी उतना ही नेक उसका स्वभाव भी था। सुन्दरता और शालीनता की प्रतिमूर्ति थी वह। इन दोनों का मणिकान्चन संयोग विरले ही होता है।

कमला के माता-पिता साधारण तौर से परिवार की गाड़ी खींच रहे थे। जब बेटी जवान हो जाती है तो उसके ब्याह की चिन्ता माँ-बाप को बेहद सताने लगती है। कमला के माँ-बाप भी चिन्ता की इस तपिश से बेतरह ग्रसित थे। उसके ब्याह की बातचीत करने उसके पिता दूर-दराज इलाकों तक जाते, किन्तु निराशा की घाटी मिलती, विचारों के शुष्क रेगिस्तान मिलते, पछाड़ खाकर उन्हें लौट आना पड़ता। दोबारा जाने की हिम्मत नहीं जुटती। किन्तु, दृढ़ता सारी विपदाओं को जीत लेती है। अन्ततः कमला की शादी किसी अच्छे घराने में कर दी गई। उसके पति किसी कार्यालय में सहायक के पद पर थे। अच्छा खाता-पीता जीवन था। आमदनी अच्छी थी। अब कमला के दिन सुख से गुजर रहे थे। शादी के एक वर्ष पश्चात् उसे चाँद-सा सलोना एक पुत्र भी हुआ। इस प्रकार उसके जीवन के धरातल पर सुख की धवल चाँदनी बिछी थी। परन्तु चाँदनी की ओट से भीषण दुःख की तमपूर्ण बदली भी झाँक रही थी। किस क्षण किसकी जिन्दगी में कौन-सी घटना घटित हो जायेगी-यह कहना बड़ी मुश्किल है। शादी के मात्र तीन वर्ष व्यतीत हुए थे। काल के क्रूर हाथों ने कमला के पति को उससे सदा के लिए छीन लिया। अब कमला विधवा हो गई। उसका समस्त जीवन दुःख की भयंकरता का अहसास कर चीत्कार कर उठा। उसके जीवन-पथ पर काँटे बिछ गये; नियति ने उसे जिन्दगी की वास्तविक कटुता का स्वाद लेने को विवश कर दिया।

बेचारी कमला पति-वियोग में अहिर्निश विलखती रहती थी। स्वजन सांत्वना के दो-चार शब्द बोल जाते, किन्तु कोई उसके जीवन-दुःख को बांटने के लिए कटिबद्ध नहीं होता। अब उसके जीवन में आशा की अगर कोई किरण थी तो वह था उसका एकमात्र बेटा-हरिहर। अपने इस बेटे के लिए ही कमला ने अपने जीवन को संघर्षमय बनाना कबूल कर लिया। उत्तरदायित्व का विवेक सर्वदा कर्म करने की प्रेरणा देता है, सही मार्ग-प्रदर्शन करता है। कमला के साथ भी ऐसा ही हुआ।

चूँकि कमला पीढ़ी-लिखी नहीं थी, इसलिए उसे पति के निधन के आधार पर अनुकम्पा पर कोई अच्छी नौकरी नहीं मिली। इसके अलावा उसके पति के अंतरंग मित्रों ने भी कार्यालय के बिगड़ते माहौल को देखकर 'चपरासीगिरी' नहीं करने की नेक सलाह दी। फलतः कमला हरिहर को लेकर अपने पति के गाँव में एक कुटिया में रहने लगी। चारों ओर प्राकृतिक वातावरण था। यहाँ उसे खाने-पीने की तकलीफ नहीं थी, किन्तु स्वजनों का अशिष्ट व्यवहार उसके लिए काँटे की चुभन के समान था। परन्तु जो अतिशय दुःख की निर्मम चोट से आहत हो उस पर व्यवहार की अशिष्टता के जहर का कोई असर नहीं पड़ता। दुःख सहते-सहते नारी पाषाण की तरह कठोर हो जाती है और फिर उस पर दुःख के वर्षा-पानी, आंधी-तूफानों का कोई खास असर दीख नहीं पड़ता। कमला के जीवन में भी दुःख की झलक अब भयावह नहीं लगती। उसने दुःख से समझौता कर लिया था; उसे अपना जीवन-संगी बना लिया था।

◆ हरिहर अब काफी बड़ा हो गया। उसने स्नातक की डिग्री हासिल कर ली। उसमें जिन्दगी की

जवाबदेही को अच्छी तरह निभाने की सामर्थ्य आ गयी थी। कमला ने हरिहर की शादी के लिए आये कई रिश्ते टुकरा दिये, क्योंकि वह चाहती थी कि जबतक हरिहर को कोई अच्छी नौकरी न मिल जाये, वह उसकी शादी तय न करे तो अच्छा। उधर माँ के प्रति हरिहर का बर्ताव भी अत्यन्त संयत, विनम्र तथा शिष्ट था। वह कमला से एक दिन कह रहा था—“माँ! तुमने मेरी खातिर न जाने कितनी यातनाएँ सहीँ, कितने कष्ट झेलें, पर उफ तक न की। सचमुच, माँ, तुम धन्य हो, साक्षात् देवी हो! अगर मैं तुम्हारा एक भी कर्ज चुका सका तो मैं स्वयं को सौभाग्यशाली समझूँगा।” यह कहकर हरिहर माँ के चरणों से लिपट गया था। कमला की आँखों में आँसू आ गये और उसने पुत्र को गले से लगा लिया।

सच ही कहा गया है कि विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। कमला की खिलती हुई आशाओं के फूल पर एक बार पुर तुषारापात होता है। यह देखकर कमला की आँखों के आगे अंधेरा छा जाता है और वह गिरकर बेहोश हो जाती है।

हुआ यों कि शाम का वक्त था। हरिहर नौकरी की तलाश में शहर से घूमकर वापस आया था। माँ! माँ! चिल्लाता हुआ कुटिया के भीतर उसने प्रवेश किया। कमला उसकी आवाज सुनकर उसके पास आयी। हरिहर ने माँ से कहा मेरी तबियत ठीक नहीं लग रही है। सचमुच कमला ने देखा कि हरिहर तेज ज्वर से पीड़ित है। तुरन्त माँ ने अपने बेटे को खाट पर लिटाकर वैद्य को बुला लाया। लेकिन कोई दवा काम नहीं आई। ज्वर बढ़ता ही गया। हरिहर की तबियत दिनानुदिन बदतर होती गई। कमला के पास इतने पैसे नहीं थे कि वह शहर जाकर बेटे का इलाज करवाती। उसने द्वार-द्वार घूमकर अपने दुःख की फरियाद की, किन्तु किसी के कानों पर जूँ नहीं रेंगी। फलतः हरिहर ज्वर की अधिकता में काफी बड़बड़ाते लगा और कुछ दिनों के बाद विक्षिप्त हो गया।

कमला समस्त दुःखों को मूक होकर सहती रही। अब उसने किसी से कोई फरियाद नहीं की। धीरे-धीरे हरिहर अपने पागलपन की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। कभी वह जोर-जोर से चिल्लाता, कभी राजनीति की बड़ी-बड़ी बातें करता। एक दिन उसने मानसिक विक्षिप्तता में आकर अपनी डिग्रियों को टुकड़े-टुकड़े कर समीपस्थ कुँए की गहराई में डाल दिये। कमला अब बूढ़ी हो चुकी थी। दुःख के कण्टकाकीर्ण पथ पर चलते-चलते अब उसमें न तो जीवन जीने की चाहत थी और न सामर्थ्य ही। फिर भी हिम्मत कर कुँए के पास जाकर उसने देखा कि हरिहर की डिग्रियों के टुकड़े कुँए की अतलता में तैर रहे हैं। हरिहर पास ही खड़ा हाथ उठाकर अर्द्धनग्न अवस्था में चिल्ला रहा था।

कमला चुपचाप अपनी कुटिया में लौट आयी। वह अत्यन्त थकी हारी प्रतीत हो रही थी। खाट पर लेटते ही उसने बड़बड़ाया कि मेरे नसीब की तस्वीर प्रभु ने दुःख की काली स्याही से रची थी। कभी भी उसे मेरे दुर्भाग्य पर तरस नहीं आया। यह कहकर उसने करवट ली और सदा के लिए आँखें बंद कर लीं। सचमुच नियति ने उसे दुर्भाग्य की दोहरी मार से तोड़ डाला जिसका भार वह वहन न कर सकी और अनन्त में एकाकार हो गई।

...

संसार की अनुभूतियाँ और घटनाएँ साहित्यकार के लिए मिट्टी हैं, जिनसे वह प्रतिमा बनाता है।

- अज्ञेय

पहचान

श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह
प्रमंडलीय लेखा अधिकारी



वतन की पुकार

श्री आर. पी. चक्रवर्ती
आशुलिपिक

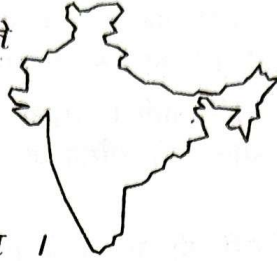
शायद तत्व चिन्तकों ने,
पैगम्बरों ने, युग द्रष्टाओं ने
आने वाले समय की
रूप-रेखा को देखा था,
और सबों से
अपने को पहचानने

जानने को कहा था ।
आगाह किया था,

लम्बा, छोटा, काला, गोरा
सबों की रंगों में लहू ही तरंगित है,
और उसकी पहचान का नाम है आदमी ।
परंतु जाने वह कौन था,
जिसने पहचान को तोड़ा ।
छोटा किया, फिर बांट दिया,
बहुत सारे दरबानों में ।

धर्म जाति, भाषा
रंग और राजनीति
बहुत सारे घेरे, और बहुत सारी पहचान ।
और फिर फरिश्ता सो गया ।
पहचान का बड़ा घेरा खो गया,
शैतान जागा, पहचान की
दुहाई दे लोगों को तोड़कर
चीखा, देखा तुम्हारी पहचान से ही
मैंने नयी पहचान निकाली ।

अब आदमी की पहचान
आदमी होना नहीं,
धर्म, जाति भाषा,
रंग और राजनीति है ।



हे भारत की संतानों !
सुनो, वतन की पुकार,
आज वतन की गरिमा को
जला रही है हिंसा की आग ।

दूट रही है वतन की एकता
फैल रही है अराजकता
चारों ओर है फैल रही
हिंसा, द्वेष और नग्नता

ये धरती है बुद्ध, कृष्ण की
यहाँ जन्में हैं नानक धीर
इस धरती को आजाद कराने
कुर्बान हुए हैं नाना वीर

आओ मिलकर संवारे निज वतन,
लायें फिर से यहाँ शांति अमन
भुलाके अपने सारे भाव-भेद,
पुष्पित कर नूतन चमन ।

देशभक्त का जीवन कटीला होता है । वह पग-पग पर दुःखों का आवाहन करता है । वेदनाएँ
उसकी सहचरी होती है ।
- शरण

क्या है ?

स्व० रामफल प्रसाद
वरिष्ठ प्रमंडलीय लेखा अधिकारी

खम्भों पर जो साड़ी हुई है,
खर-पातों से मढ़ी हुई है,
धूप, हवा, खल, वचक, राजा,
सबके लिये खुला दरवाजा ।
मेरी इस कुटिया के आगे
तेरी भव्य अटारी क्या है ?
सी-सीकर पट रोज पहनना
हँस-हँसकर तकलीफें सहना,
साग-पात पर समय बिताना,
कभी बिना खाये सो जाना ।
मेरे इस अभाव के आगे
नोटों भरी पिटारी क्या है ?
उधर न चप्पल, इधर न जूते,
हम दम्पति के घर भी चूते,
फिर भी गहरा स्नेह हृदय का,
जहाँ न कोई कारण भय का
मेरे पूत प्रेम ढिग तेरी
छल-प्रपंच की यारी क्या है ?
जो मिलता है वह खा लेती है,
कभी-कभी कुछ गा लेती है,
खुश हो जाती है वह दिल से
मिले खिलौना जब मुश्किल से ।
मेरी इस बिटिया के आगे
सुखिया राजकुमारी क्या है ?
मौके पर हिलसा पहुँचाती है,
रोके पर बिल्कुल रुक जाती,
अन्य गाड़ियाँ रुकी रहें तो
यह झटपट आगे बढ़ जाती ।
मेरी इस साइकिल के आगे
मोटर कार सवारी क्या है ?
जिसका सबसे कम 'इनकम' है,
कम वेतन का जिसे न गम है,
जिसका रेल, यान टमटम है,
जो मिलता उसमें बम-बम है ।
इस लेखाकार के आगे
सारी धन-सम्पत्ति क्या है ?

गुलामी, आजादी और आज के लोग

सुश्री सुचिता कुमारी, सुपुत्री श्री हृदयानन्द प्रसाद,
सहायक लेखा अधिकारी

आज है आजादी हमें,
पर कहाँ थी उस समय,
जब अंग्रेजों ने राज चलाये,
अपने देश पर जुल्म ढाए ।
वीरों ने प्राण गंवाए,
तब जाकर आजादी पाए ।
पर आज के लोग ये भूल गये हैं,
स्वार्थ में सबकुछ भूल गये हैं ।
नहीं फिक्र है उन्हें आजादी की,
फिक्र तो बस है अपनी जिन्दगानी की ।
धन को अपना सबकुछ माने,
आजादी की न कीमत पहचाने ।
आज के लोग हैं रिश्वतखोर,
अन्दर-ही-अन्दर वो हैं चोर ।
गरीबों पर जुल्म वे ढाएँ
ऊपर से भगवान कहलाएँ ।
दूसरों से कहते देश बचाओं, देश बचाओ,
अपने से कहते खाओ-पियो, मौज उड़ाओ ।
हर तरफ घूमते बदमाश,
लौट आता अतीत काश !
अब गुण्डों का राज चलेगा,
तब न कोई कुछ कर पायेगा ।
आवश्यकता है आज के लोग
गुलामी औ' आजादी के फर्क को जानें
हर कीमत पर आजादी को पहचानें ।

कितनी ही राजनीतिक आजादी हो, वह भूखी जनता को सन्तोष प्रदान नहीं कर सकती ।
- लेनिन

बाबुल की गलियाँ

श्री शशि भूषण प्रसाद,
वरिष्ठ लेखा अधिकारी

बाबुल तुम बगिया के तरुवर
हम तरुवर की चिड़िया रे,
दाना चुगते उड़ जायँ हम
पिया मिलन की गलियाँ रे ।
उड़ जायँ तो लौट न पायें
ज्यों मोती की लड़ियाँ रे ॥

हमको सुध न जन्म के पहले
अपनी कहाँ अटारी थी,
आँख खुली तो नभ के नीचे
हम थे गोद तुम्हारी थी ।
ऐसा था वो रैन बसेरा,
जहाँ साँझ भी लगे सवेरा,
बाबुल तुम गिरिराज हिमालय,
हम झरनों की लड़ियाँ रे ।
उड़-जायँ तो लौट न आये
ज्यों मोती की लड़ियाँ रे ॥

बचपन के भोलेपन पर जब छिटके रंग जवानी के
प्यास प्रीति के जब जागी, हम मीन बने बिन पानी के ।
जन्म-जन्म के प्यासे नैना, चाहा नहीं कुंवारे रहना ।
बाबुल दूँद फिरो तुम हमको, हम दूँद बाबरिया रे ॥
चढ़ी उमर जवानी के तो

कुल मर्यादा से टकराई ।
पगड़ी गिरने के डर से
दुनिया जो डोली ले आयी ॥
मन रोया, गूँजी शहनाई
नयन बहे, चुनरी पहनायी
पहनायी चूड़ी सुहाग की
या डाली हथकड़ियाँ रे ।
उड़ जाऊँ तो लौट न आऊँ
ज्यों मोती की लड़ियाँ रे ॥
नेह लगा तो नैहर छूटा
पिया मिले तो बिछड़ी सखियाँ



प्यार जताकर पीड़ा मिली तो
नीर नहीं फूटी आँखियाँ देखा जो समुद्राल पड़गकर
दुनिया ही कुछ न्यारी थी ।
फूलों का था देश हरा
पर कांटों को फुलवारी थी ॥
कहने को सारे अपने थे
पर दिन दोपहर के सपने थे ।
मिली नाम की कोमलता पर कोमल नाम कंकड़ियाँ रे
उड़ जाये तो लौट न आये ज्यों मोती की लड़ियाँ रे ॥
वेद-मंत्र के लिखे पुरुष के मुश्किल था बचकर जाना,
हर दानव से बच जाने को पति को परमेश्वर माना।
दुल्हिन बनकर दिल समझाया
पत्नी बनकर घरवार चलाया
माँ बनकर ममता बाँटी तो महल बनी झोपाडियाँ रे ।
उड़ जाये तो लौट न आये ज्यों मोती की लड़ियाँ रे ॥
मन की सेज सुला प्रियतम को
दीप नयन का बंद किया ।
छुटा जगत से सपने को
सिन्दूर बिन्दु में बंद किया ।
प्याग रंग से साधा मन को
ब्याह रंग से बांधा मन को ।
पंछी के उड़ जाने पर, खुली नयन कड़ियाँ रे ।
उड़ जाये तो लौट न आये ज्यों मोती की लड़ियाँ रे ॥
जन्म लिये तो जले पिता-माँ
यौवन खिला ननद-भाभी ।
ब्याह हुआ तो जला मुहल्ला
पुत्र हुआ तो वधू प्यारी ।
जले हृदय के अन्दर नारी
उस पर बाहर दुनिया सारी ।
मर जाने पर भी मरघट में
जल-जल दूटी लकड़ियाँ रे ॥
उड़ जायँ तो लौट न आये
ज्यों मोती की लड़ियाँ रे ॥



भारतीय सांस्कृतिक उन्नयन एवं उद्भव तथा विश्व-दर्शन

डा. विजय कुमार सिन्हा
कल्याण सहायक

जब पूरा विश्व अज्ञानता के गहन तिमिर में लिपटा पड़ा था तो भारत में धार्मिक-सांस्कृतिक धरातल पर एक अद्वितीय आध्यात्मिक वैचारिक क्रांति की नींव पड़ चुकी थी। विश्व की प्रथम भाषा संस्कृत भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक-दार्शनिक वाङ्मय का वाहन बन चुकी थी। ब्रह्मवाणी ऋग-वेद में प्रकृति के गूढ़ रहस्यों की व्याख्या विश्व के समक्ष प्रस्तुत हुई। ऋगवेद में ही "एकम् सद् विप्राः बहुधा वदन्ति" की देववाणी गुंजायमान हुई जो दो हजार वर्ष बाद ईसाई एवं इस्लाम तथा दूसरे 'सिमाइट' धर्मों को 'ईश्वर एक है' का मूल आध्यात्मिक आधार प्रदान किया। एकेश्वरवाद की प्रेरणा भी मिली। विश्व-बंधुत्व तथा अनेकता में एकता का दर्शन विकसित हुआ। वेदों पर व्याख्यायें रची गईं जो 'ब्राह्मण' कही गईं। इन 'ब्राह्मणों' में पृथक-पृथक वैदिक ऋचाओं की गद्य रूप में सरल विवेचना है। 'आरण्यक' इन्हीं 'ब्राह्मणों' के अंग हैं जिनमें अत्यंत गूढ़ विचारों का उल्लेख है।

उत्तर वैदिक काल में कर्मकांड एवं यज्ञों की प्रधानता शुरू हुई (छः सौ वर्ष ई.पू.) तो तत्कालीन सामाजिक प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप भारतीय चिंतकों-मनीषियों ने उपनिषदों की रचना कर विश्व को ज्ञान का प्रकाश-स्तम्भ प्रदान किया। इनमें अंधविश्वास, यज्ञ एवं कर्मकांड पर कठोर प्रहार किए गए। ब्रह्म-ज्ञान को परम सत्य की प्राप्ति का मार्ग बताया गया। भारतीय वैदिक मनीषियों ने जिस मानसिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं वैचारिक क्रांति का सूत्रपात किया, उपनिषदों ने भारतीय दर्शन को अजेय शिखर तक पहुंचाया। 'अद्वैतवाद' के दर्शन ने आने वाली विश्व सभ्यताओं को नई रोशनी दी। परम सत्य, सृष्टि-प्रविधि, आत्मा तथा ब्रह्म एवं आत्मा का सम्बंध दार्शनिक अध्ययन के मूलभूत कारक बने। उपनिषदों के अनुसार किसी व्यक्ति में कुछ भी यदि चिरस्थायी है, सत्य है, यथार्थ है तो वह आत्मा है। परम सत्य 'ब्रह्म' है। 'ब्रह्म' नित्य है, अनंत है एवं पूर्ण चेतनता में दृष्टिगोचर है। सकल विश्व 'ब्रह्म' से आविर्भूत है एवं उसी में उसका पराभव है। 'अहम् ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ। यह विश्व ब्रह्म के मूर्त विस्तार का रूपमात्र है। परम सत्य यह है कि ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यदि एक अनेकता में परिलक्षित है तो वह 'माया' की विस्मयकारी शक्ति है। मनुष्य का अज्ञान ही उसके कष्ट-विषाद का कारण है। आत्मा, ब्रह्म की तरह ही कायिक-भौतिक बंधनों, इच्छाओं, हर्ष-विषाद, रंग-राग तथा जन्म-मृत्यु से मुक्त है। ब्रह्म की अनुभूति परम-सुख है। ब्रह्म से एकाकार होना ही मोक्ष है। विश्व में कहीं भी आत्मा की बोधगम्य परिभाषा इतनी उत्कृष्टता से नहीं की गई जितनी 'गीता में'। "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥" गीता के इस श्लोक का अर्थ है कि इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकती। गीता में मोक्ष-प्राप्ति के तीन मार्ग बताए गए; कर्म, ज्ञान और भक्ति। विश्व के सभी धर्म इन्हीं तीनों पर या इन तीनों में से किसी एक पर आधारित हैं।

विश्व की एक बहुत बड़ी आबादी आज भी धार्मिक अनुष्ठानों, आडम्बर, अंधविश्वास एवं धर्म-प्रेरित भ्रम-जाल में फंसी हुई है। जबकि हजारों वर्ष पहले भारतीय दर्शन ने इन बुराइयों से लड़ने के

मार्ग बताए। ये मार्ग तार्किक परीक्षण, बौद्धिक सत्यापन एवं विवेक-शक्ति पर आधारित हैं। भारतीय दर्शन ने उस समय में नास्तिकवादी, भौतिकवादी तथा भोगवादी सिद्धांत प्रतिपादित किए जबकि शेष विश्व टोटमवाद एवं प्रकृति की संहारक-विनाशकारी शक्तियों के प्रति नत-मस्तक था। चारवाक का भोगवादी दर्शन था :

“यावत्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥”

विश्व के जिन धर्मों में पुनर्जन्म की मान्यता नहीं है, वे चारवाक के द्वारा पुनर्जन्म को नहीं मानने के सिद्धांत से प्रभावित हैं। विश्व के दो महत्वपूर्ण धर्म, जैन तथा बौद्ध दोनों नास्तिकता के निकट माने जाने वाले धर्म हैं। उनका मुख्य लक्ष्य आदर्श आचार का मनुष्य के द्वारा पालन करना है। समुचित मानव आचरण आज वैश्विक समाज की पहली अनिवार्यता है। विश्व के सभी धर्मों में सम्यक् आचरण को प्राथमिकता मिली है।

भारतीय आस्तिक दर्शन तो और भी समृद्ध है। कपिल के सांख्य में सृष्टि के कारक पुरुष एवं प्रकृति को बताया गया है अर्थात् आत्मा एवं ब्रह्मण का आध्यात्मिक द्वय इंगित हुआ है। पतंजलि ने अपने योग सूत्रों के द्वारा तप एवं योग को मुक्ति का मार्ग बताया। योग एवं तप सभी धर्मावलम्बियों के आध्यात्मिक-लक्ष्य प्राप्ति को सुगम बनाने की सामर्थ्य रखते हैं तथा इनकी प्रासंगिकता इस विज्ञान-तकनीक प्रधान युग में भी है। महर्षि गौतम ने ज्ञान प्राप्ति पर बल दिया। उन्होंने ‘न्याय’ सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अनुमान-प्रमाण, तर्कसंगतता एवं तात्त्विकता को सर्वप्रथम गौतम ने ही जन्म दिया। आगे चल कर अरस्तु ने तर्कशास्त्री को यूरोप तथा अन्य स्थानों पर नई गति के साथ आगे बढ़ाया। सर्वप्रथम भारत में ही पदार्थ-संरचना एवं आण्विक अध्ययन का सूत्रपात महर्षि कणाद ने अपने ‘वैशेषिक’ दर्शन में किया। उन्होंने परमाणुओं को सृष्टि का कारण बताया। इसी तरह स्वर्ग एवं मोक्ष की कल्पना जैमिनी की मीमांसा में उपलब्ध हुई। वेदान्त के प्रवर्तक महर्षि वदरायण ने ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म को जगत् का सार माना तथा संसार को मिथ्या माना।

इस तरह हम देखते हैं कि भारतीय दर्शन की व्यापकता में आस्तिक-नास्तिक, द्वैतवाद-अद्वैतवाद, भोगवाद-संन्यास, प्रवृत्ति-निवृत्ति आदि परस्पर विरोधी विचारधाराओं का भी सहज समावेश है। भारतीय दर्शन की सर्वव्यापकता इन्हीं मौलिकताओं के कारण है और विश्व के दर्शन के आधार इन्हीं मौलिकताओं से उभर कर आए हैं।

...

भारत की एकता का मुख्य आधार है एक संस्कृति, जिसका उत्साह कभी नहीं टूटा। यही इसकी विशेषता है। भारतीय एकता अक्षुण्ण है, क्योंकि भारतीय संस्कृति की धारा निरन्तर बहती रही है और बहती रहेगी।

- मदनमोहन मालवीय



खेलों का बादशाह : शतरंज

श्री अमरेन्द्र कुमार पाण्डेय

अनुभाग अधिकारी

“पढ़ोगे-लिखोगे बनोगे नवाब ।

खेलोगे-कूदोगे होंगे खराब ॥”

आज शायद ही ऐसा कोई सिरफिरा व्यक्ति मिल जाए, जो उपर्युक्त तुकबंदी का हिमायती हो । इसका अर्थ यह नहीं कि आज के लोगों में नवाब बनने की इच्छा न रही ।

आधुनिक कार्य-संकुल वैज्ञानिक युग में खेल महज शैथिल्य, क्रांति तथा उबारूपन दूर करने का साधन न रहा, बल्कि अपनी आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों के कारण यह संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है । खेलकूद ने आज 'स्वस्थ प्रतियोगिता' का अपना सुविकसित रूप धारण कर लिया है । राष्ट्र समाज की प्रतिष्ठा आज इसके साथ जुड़ गई है । खेल प्रतियोगिता में सफलता की मात्रा आज राष्ट्र/समाज की खुशहाली का पैमाना माना जाता है । ओलम्पिक सर्वजेता राष्ट्र, निश्चितरूपेण आर्थिक रूप से सशक्त राष्ट्र ही होता है । आर्थिक रूप से विपक्ष देश प्रायः इस क्षेत्र में पिछड़े रह जाते हैं ।

आज के आर्थिक युग में आर्थिक पहलू से अछूता रहकर कोई गतिविधि प्रचारित-प्रसारित नहीं हो सकती । खेलकूद इसका अपवाद नहीं है । खेल का आर्थिक पक्ष काफी सशक्त है । बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ विज्ञापन हेतु जो बेशुमार दौलत खेल-आयोजन पर खर्च करती हैं, वह खेल के प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध हो रही हैं । खिलाड़ियों को जहाँ खेल के लिए बहुत अधिक रूपए मिलते हैं, वहीं इससे अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े लोग यथा खेल सामग्री निर्माणकर्ता, प्रशिक्षणदाता, पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशक की अच्छा-खासा धनार्जन करते हैं । आज की तारीख में खेल के माध्यम से नवाब बने लोगों की संख्या को देखते हुए, यह कहा जा सकता है कि खेलकूद नवाब बनने में बाधक नहीं, साधक हैं ।

मेरे विचार से, खेलकूद विद्या के क्षेत्र में उन्नति के लिए सहायक ही नहीं अपितु अपरिहार्य है, क्योंकि विद्योपार्जन के लिए भी स्वस्थ एवं पुष्ट-शरीर आवश्यक है । कहा भी जाता है - "A sound mind in a sound body". स्वामी विवेकानन्द की उक्ति "ऐ मेरे मीत, यदि तुम ठिकाने से फूटबाल नहीं खेल सकते तो गीता के मर्म को भी नहीं समझोगे"-खेल कूद की महत्ता को उजागर करती है । आज खेलकूद का उज्ज्वल पक्ष चरम उत्कर्ष पर है और इसके अनेक वातायन खुले हैं, जबकि आज की शिक्षा-प्रणाली की दुर्दशा का अन्दाजा, सुप्रसिद्ध शायर अकबर इलाहाबादी के इस शेर से लगाया जा सकता है -

“ओ मेरे अहबाब, क्या करे नुमाएं कर गए ।

बी.ए. हुए, नौकर हुए, पेंशन मिली और मर गए ॥”

इस प्रकार लेख के प्रारम्भ में उल्लिखित तुकबन्दी जो खेलकूद एवं पढ़ाई में विरोध का आभास कराती है, आज निरर्थक नहीं तो कम-से-कम अप्रासंगिक तो अवश्य ही हो गई है ।

खेलकूद स्वास्थ्य की दृष्टि से, विशुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से प्रतिष्ठा की दृष्टि से, हर दृष्टि से महत्वपूर्ण है, यह हमारे जीवन-यंत्र को गतिशील रखने के लिए स्नेहक (ग्रीज) के समान है । इसके अभाव में हमारे व्यक्तित्व का समग्र विकास नहीं हो पाता है । जीवन में प्रतियोगिता का साक्षात्कार सर्वप्रथम खेल से ही होता है । सामाजिक अभियोजन एवं अनुशासन के महत्व का आभास हमें खेलकूद में भाग लेने से अनायास ही हो जाता है । संक्षेप में,

खेलकूद का महत्व निर्विवाद है, निःसंदिग्ध है ।

खेल मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं-अंतःकक्षीय एवं बहिः कक्षीय । यों तो प्रत्येक खेल की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, परन्तु इनमें शतरंज एक विशिष्ट स्थान रखता है ।

शतरंज एक अन्तःकक्षीय अन्तर्राष्ट्रीय खेल है । 64 वर्ग के वर्गाकार फलक पर $16 \times 16 = 32$ मोहरों से खेले जाने वाले इस खेल का विशेष लगाव मस्तिष्क से है । इसे बादशाहों का खेल कहा जाता है, क्योंकि राजे-महाराजे लड़ाइयों का शौक पूरा करने के लिए इसे खेला करते थे, मुगलकाल में शाही खानदानों में शतरंज खेलना एक फैशन-सा बन गया था । शतरंज के प्रति आमलोगों की धारणा है कि यह एक नीरस एवं उबाऊ खेल है, परन्तु वास्तविकता यह नहीं है । शतरंज खेलते हुए दो व्यक्ति भौतिक रूप से निष्क्रिय भले ही नजर आते हों परन्तु आन्तरिक रूप से वे अतिसक्रिय एवं आन्दोलित रहते हैं, जिसकी पुष्टि कई वैज्ञानिक परीक्षणों से हो चुकी है । शतरंज एक रोचक खेल है, जिसकी रोचकता इसकी प्रत्येक चाल के साथ बढ़ती जाती है । शतरंज की प्रत्येक चाल से उत्पन्न संभावित परिस्थितियाँ उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं, जिनके संभावित समाधान की संगणना करना चुनौती के रूप में सामने आता है, और यही इस खेल का मुख्य आकर्षण है । लोग घंटों इस खेल में तल्लीन रहते हैं, और इस विशिष्ट गुण के कारण लोग इससे ऊबते नहीं हैं । अन्य खेल यथा हॉकी, फूटबाल, क्रिकेट इत्यादि एक विशेष उम्र सीमा तक ही खेले जा सकते हैं जबकि शतरंज के खेल का आनन्द 8 वर्षीय बालक से लेकर 80 वर्षीय वृद्ध भी ले सकते हैं । महानगरों में घटती मैदानों की संख्या भी शतरंज को अन्य खेलों पर वरीयता देती है । साथ ही इसमें साजो-सामान की आवश्यकता, अन्य खेलों की तुलना में कम पड़ती है । शतरंज प्रत्युत्पन्नमति को बढ़ावा देना है । इसके इन विशिष्ट गुणों को देखते हुए इसे 'खेलों का बादशाह' की संज्ञा देना अतिशयोक्ति न होगी ।

जनश्रुति है कि रावण की पत्नी मदोदरी ने शतरंज का खेल राक्षसों को सिखाया ताकि वे खाली समय में खेल में संलग्न रहें और उत्पात न मचाएँ । कहा जाता है कि भारत में यह खेल अति प्राचीन काल से चतुरंग के रूप में खेला जाता था, और राजाओं के सुसज्जित प्रशिक्षित सेना को चतुरंगिनी सेना का नाम दिया जाता था ।

प्रमाणित दस्तावेज के अनुसार शतरंज का आविष्कार परसिया (आधुनिक ईरान) में हुआ था । कहा जाता है कि इस खेल से वहाँ के शाह इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने इसके आविष्कारक को अपने इच्छानुसार कुछ भी मांगने का वचन दिया । आविष्कारक ने बादशाह से शतरंज के प्रथम वर्ग पर गेहूँ का एक दाना, दूसरे पर दो, तीसरे पर चार की मांग की ।

यों तो यह मांग काफी सरल प्रतीत होती है, परन्तु वास्तविकता ऐसी नहीं है । विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली गुणोत्तर श्रेणी के आधार पर हम, मांगकर्ता की मांग को आसानी से समझ सकते हैं । इसके अनुसार प्रथम वर्ग में $2^0 = 1$ गेहूँ की एवं पचासवें वर्ग में $2^{49} = 562949953421312$ गेहूँ की आवश्यकता होगी । कुल 64 वर्ग पर गेहूँ के दानों की संख्या $2^{64} - 1$ होगी, जिसे संख्या में व्यक्त करना, श्रमसाध्य एवं क्लिष्ट है । स्पष्टतः मांगकर्ता की मांग $2^{64} - 1$ दानों की थी, यह गेहूँ की उतनी मात्रा है, जिसे सम्पूर्ण भारत वर्ष पर अगर फैला दिया जाए तो 5 से.मी. की एक मोटी तह तैयार हो जाएगी । कहना न होगा, जब सम्राट को मांग की वास्तविकता का पता चला तो अत्यंत लज्जित हुए ।

यही है यह शतरंज का खेल, जो रोचकता से भरपूर है ।

...



अपेक्षा

श्री बंशीधर मिश्र
अनुभाग अधिकारी

“अपेक्षा” अर्थात् “कष्ट का कारण”—यदि यह बात कही जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सही मायने में दुनिया में “अपेक्षा” शब्द की सार्थकता की आस लगाना ही कष्ट का कारण है। पग-पग पर लोग अपेक्षाओं से भरे होते हैं और उपेक्षित महसूस करने की स्थिति में कष्ट का आलिङ्गन करते हैं।

पिता पुत्र से अपेक्षा रखता है, पुत्र पिता से अपेक्षा रखता है, पति पत्नी से अपेक्षा रखता है, पत्नी पति से अपेक्षा रखती है, राजा प्रजा से अपेक्षा रखता है, प्रजा राजा से अपेक्षा रखती है—आदि-आदि। इस तरह नजर दौड़ायी जाय तो व्यक्तिगत अपेक्षाओं से लेकर सार्वजनिक अपेक्षाओं तक दुनिया भरी पड़ी है और यही अपेक्षाएँ कष्ट, असंतोष, पीड़ा आदि को जन्म देती हैं।

शायद “अपेक्षा” का न रखना कष्ट को दूर भगाने में काफी सहायक सिद्ध हो सकता है। “अपेक्षा” रखने की ही स्थिति में लोग उपेक्षित महसूस करते हैं अथवा यूँ कहें कि जिनसे अपेक्षा की जा रही हो वे अपेक्षित रूप से कम फलदायी/कारगर सिद्ध हो रहे हों और इस तरह की स्थिति का पैदा होना ही कष्ट को पैदा करने की स्थिति बन पड़ती है। कष्ट से दूर रहने की प्रवृत्ति हर व्यक्ति की होती है, परन्तु यह किसी को पूर्व से थोड़े ही ज्ञात होता है कि सामने वाला अपेक्षाओं के अनुरूप कारगर सिद्ध न होगा। ऐसी स्थिति में हर आदमी को चाहिए कि वह अपने कर्म को स्वार्थ, अपेक्षाओं, सुख की लालसा से पड़े रहते हुए करे। यदि परिणाम पक्ष में आता है तो सुख की प्राप्ति तो होती ही है और यदि परिणाम आशानुरूप न आता हो तो भी संतोषी बनते हुए आत्म संतोष देना चाहिए। “गीता” में इस ज्ञान को प्राथमिकता भी दी गयी है कि आदमी को कर्म करते जाना चाहिए न कि फल की चिन्ता करनी चाहिए।

विनोबा भावे जो महान संत और विचारवादी रहे हैं, ने “प्रार्थना” का अर्थ समझाते हुए लिखा है कि — “प्रार्थना” सही मायने में कर्मवाद एवं दैववाद का समन्वय है अर्थात् ईश्वर की सही प्रार्थना यही है कि मानव अपना कर्म करते हुए ईश्वर की आराधना करे ताकि कर्म का फल प्राप्त हो। उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है कि यदि कोई व्यक्ति बम्बई जानेवाली गाड़ी में बैठकर प्रार्थना करे और कहे कि हे ईश्वर मुझे कलकत्ता पहुंचा दो तो यह कतई संभव नहीं है। हाँ, अगर कलकत्तावाली गाड़ी में बैठकर यह प्रार्थना की जाय तो सकुशल कलकत्ता पहुंचा जा सकता है। इस तरह कलकत्ता जाने के लिए कलकत्ता की गाड़ी में बैठना कर्तव्य है।

अतः प्रधानता कर्म को ही दी जानी चाहिए न कि “फल” को अर्थात् “अपेक्षा” को। इस स्वभाव से जुड़कर आदमी अपने आप को निश्चित ही सुख के करीब महसूस कर सकने की स्थिति में हो पायेगा। अपेक्षाओं के न रखने की स्थिति में कर्म का फल सर्वथा सुखदायी ही होता है जिसे दैववादी भगवान की इच्छा का नाम देते हैं।

...

दोष

सुश्री लीना राउत, सुपुत्री श्री एस. सी. राउत
वरिष्ठ उपमहालेखाकार



दोषों को मिटाने का अच्छा उपाय है—दोषों को अपने में न माने, और दोष जनित गलती को दुबाग न करे। बार-बार गलती करने से ही दोष बने रहते हैं। गुण और दोष दोनों ही उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं, और हम स्वयं निरन्तर रहने वाले हैं। ऐसे ही संसार उत्पन्न और नष्ट होने वाला है एवं परमात्मा निरन्तर रहने वाले हैं। अतएव हम स्वयं और परमात्मा तो एक हैं, और दोष तथा संसार एक। तात्पर्य यह कि हमारा सम्बन्ध परमात्मा के साथ है, संसार और दोषों के साथ नहीं। परन्तु हमने परमात्मा से विमुख होकर संसार से अपना सम्बन्ध मान लिया, यही गलती हुई। संसार और शरीर से सम्बन्ध हमने ही माना है, संसार और शरीर ने हमसे सम्बन्ध नहीं माना है। हम ही परमात्मा से विमुख हुए हैं, परमात्मा हमसे विमुख नहीं हुए हैं। अतएव संसार और शरीर मेरे नहीं हैं तथा मैं उनका नहीं हूँ, अपितु परमात्मा मेरे हैं और मैं परमात्मा का हूँ—ऐसा आज ही मान लें। शरीर संसार का अंश है और हम परमात्मा के अंश हैं। शरीर को संसार की सेवा में अर्पण कर दें, और स्वयं को परमात्मा के अर्पण कर दें—इतना ही काम साधक को करना है। संसार को अपना मानते ही मनुष्य फंस जाता है और तरह-तरह के दुःख भोगता है। वह समझता तो यह कि शरीर धन, जमीन, मकान, परिवार आदि मेरे हैं और मैं उनका मालिक हूँ पर वास्तव में वह उनका गुलाम हो जाता है। वहम तो मालिक बनने का होता है पर बनता है गुलाम यह बिल्कुल सच्ची बात है। मनुष्य को चाहिए कि उन वस्तुओं की सेवा कर दें और उनसे कोई आशा न रखें, उनमें ममता न करें। शरीर की भी सेवा कर दें। उसे अन्न, जल, आदि दे दें, पर उसे अपना न माने। शरीर को सदा रख नहीं सकते, उसे इच्छानुसार बना नहीं सकते, उसमें चाहे जैसा परिवर्तन नहीं कर सकते, फिर वह अपना कैसे? रूपये, जमीन, मकान आदि को भी इच्छानुसार नहीं रख सकते। अतः 'वे अपने हैं' यह सरासर झूठी बात है। वे सेवा के लिए हमें मिले हैं, अतः उनकी निःस्वार्थ भाव से सेवा कर दें। वे अपने दीखते हैं तो यह भगवान की उदारता है। भगवान किसी को कोई वस्तु देते हैं तो इस ढंग से देते हैं कि वह उसे अपनी ही प्रतीत होती है। यह देने वाले की विलक्षण उदारता है कि सब कुछ देकर भी उसने अपने आपको छिपा रखा है। मिली हुई वस्तु को अपनी मानना भगवान की उदारता का दुरुपयोग है। अतः जो अपना नहीं है, उसे अपना नहीं मानना है, और जो वास्तव में अपना है उसके (परमात्मा) सम्मुख होना है। शरीरादि पदार्थ प्रतिक्षण ही नाश की ओर जा रहे हैं। आज तक ये पदार्थ किसी के पास सदा नहीं रहें, तो अब कैसे रहेंगे? इन आने-जाने वाले पदार्थों को अपनी ओर से छुट्टी दे दें। ये आ जायं तो मौज, चले जायं तो मौज। इसी का नाम त्याग है। त्याग से तत्काल शान्ति प्राप्त होती है—त्याग का अर्थ यह नहीं है कि धन, जमीन, परिवार आदि को छोड़कर भाग जायं। इन्हें छोड़कर जहाँ भी जायं, शरीर तो साथ ही रहेगा। शरीर भी तो उन्हीं (धन, जमीन, आदि) का साथी है। एक शरीर से सम्बन्ध है, तो संसार मात्र से सम्बन्ध है। शरीर संसार का बीज है। एक बीज से जंगल पैदा हो सकता है। इसलिए इन पदार्थों को स्वरूप से नहीं छोड़ना है, अपितु इन्हें अपना और अपने लिए नहीं मानना है। इन्हें अपना न मानने पर सब चिन्ता क्लेश मिट जाते हैं। कन्या बड़ी होने पर उसकी बहुत चिन्ता रहती है। पर उसका अच्छे घर में विवाह हो जाय तो चिन्ता

मिट जाती है। कन्या भी वही, और हम भी वही, पर विवाह के बाद वह कन्या हमारे घर में बैठी है तो भी उसकी चिन्ता नहीं होती, क्योंकि अब वह अपनी नहीं है—ऐसा मान लिया। इसी प्रकार यह शरीर भी कन्या है। इसका पालन-पोषण तो करना है, पर इसे अपना नहीं मानना है। इस शरीररूपी कन्या को भगवान के हाथ सोंपकर निश्चिन्त हो जायं। शरीरादि सांसारिक पदार्थों को आज तक कोई नहीं रख सका। कई बड़े-बड़े तपस्वी हुए और उन्होंने उनके बड़े-बड़े वरदान प्राप्त किये, पर शरीरादि को कोई रख नहीं सका। इन्हें कोई रख सकता ही नहीं। फिर इन्हें अपने पास रखने का झूठा प्रयास करने से क्या लाभ? शरीर, धन, जमीन, मकान, परिवार आदि को अपने पास बनाये रखने का प्रयास करना अंधेरा ढोने के समान ही है। अंधेरे को ढोकर, उसे उठाकर क्या बाहर फेंका जा सकता है और यदि कोई दीपक लेकर अंधेरे को देखना चाहे, तो क्या देख सकता है। इसी प्रकार संसार को देखने का प्रयास करें, तो मिलेगा कुछ नहीं, क्योंकि असत् संसार की स्वतंत्र सत्ता है ही नहीं। केवल सत् परमात्मा की सत्ता से ही वह सत्तावान् दीख रहा है। साधक गुण और दोष दोनों से अपना सम्बन्ध न माने तो गुणों का अभिमान नहीं रहेगा, और दोष रहेंगे ही नहीं। स्वयं की स्थिति गुण-दोष रहित है। इसलिए कहा गया है—गुणों और दोषों पर दृष्टि जाना अर्थात् उनसे अपना सम्बन्ध मानना ही सबसे बड़ा दोष है, और उनपर दृष्टि न जाकर अपने निर्विकार स्वरूप में स्थित रहना ही सबसे बड़ा गुण है। अपने में गुणों की महिमा दोषों के कारण ही होती है। जैसे धनवानों की महिमा निर्धनों के कारण ही है, धनवानों के कारण नहीं, विद्वानों की महिमा मूर्खों के कारण ही है, विद्वानों के कारण नहीं, वक्ता की महिमा श्रोताओं के कारण ही है, वक्ताओं के कारण नहीं। छोटी वस्तु रहने के कारण ही बड़ी वस्तु की महिमा होती है। यदि छोटी वस्तु न रहे, तो बड़ी वस्तु कैसे देखने में आयेगी। संसार के भोग जहर के लड्डू के समान हैं। मनुष्य लड्डू नहीं छोड़ता, तो जहर मनुष्य को नहीं छोड़ता। जहर से बचने के लिए लड्डू का त्याग करना ही पड़ेगा। लड्डू भी खा लें और जहर भी न चढ़े, ऐसा होगा नहीं। यदि यह पता लग जाय कि लड्डू में जहर है तो मीठा लगने पर भी उसे कोई खायेगा नहीं। यदि उसे कोई खाता है, तो इससे यही सिद्ध होता है कि लड्डू में जहर केवल सुना हुआ है, माना हुआ नहीं है।

...

जब तक तुममें दूसरों के दोष देखने की आदत मौजूद है, तबतक तुम्हारे लिए ईश्वर का साक्षात्कार करना अत्यन्त कठिन है।

- स्वामी रामतीर्थ

राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए वर्ष 1998-99 के छः महत्वपूर्ण लक्ष्य

1. जांच बिन्दु (तीनों क्षेत्रों के लिए)
राजभाषा से संबंधित आदेशों के कार्यान्वयन के लिए प्रस्तावित जांच बिन्दु
राजभाषा नियम 1976 के नियम-12 के अनुसार केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक अंगों की यह जिम्मेदारी है कि वह राजभाषा अधिनियम, 1963 और उसके अधीन बनाए गए नियमों के प्रावधानों के समुचित अनुपालन के लिए प्रभावी जांच-बिन्दु बनाएं।
इस समय जो जांच बिन्दु काम कर रहे हैं, अथवा जो और बनाए जा सकते हैं उनका विवरण परिशिष्ट में दिया गया है।
2. सरकारी कामकाज में मानक शब्दावली का प्रयोग
अनुमोदित शब्दावली का ही प्रयोग करें। सभी मंत्रालय, विभाग, कार्यालय, उपक्रम, निगम, बैंक आदि अपने कामकाज में विशेषकर प्रशासनिक क्षेत्र में केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा अनुमोदित और विधि के क्षेत्र में विधि मंत्रालय, विधायी विभाग (राजभाषा खण्ड) द्वारा अनुमोदित शब्दावली का ही प्रयोग करें।
3. वैज्ञानिक और तकनीकी संगोष्ठियों, परिचर्चाओं, सम्मेलनों आदि में शोध पत्र आदि पढ़ने को बढ़ावा देना और उनका प्रकाशन
सभी प्रकार की वैज्ञानिक/तकनीकी संगोष्ठियों, परिचर्चाओं आदि में न केवल राजभाषा हिंदी में शोध पत्र आदि पढ़ने की छूट दी जाए बल्कि वैज्ञानिक, तकनीशियनों और अन्य कार्मिकों को हिंदी में पेपर पढ़ने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया जाए और केवल हिंदी में संगोष्ठी आयोजित करने का प्रयत्न किया जाए। वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों पर हिंदी में पेपर छापने के लिए या तो पहले से निकलने वाली पत्रिकाओं में उन्हें छापने का प्रबंध करें या उनके लिए अलग से वैज्ञानिक पत्रिकाएं निकालें और पत्रिका की एक प्रति राजभाषा विभाग को भी भेजें।
4. हिंदी टेलीफोन डाइरेक्टरी का प्रयोग
यह वांछनीय है कि दिल्ली स्थित केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों द्वारा हिंदी टेलीफोन डाइरेक्टरी का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाए।
जिस टेलीफोन पर एक्सटेंशन हो उसके लिए कम से कम एक टेलीफोन, डाइरेक्टरी हिंदी में ली जाए। मंत्रालय विभाग आदि हिंदी की टेलीफोन डाइरेक्टरी की अपनी आवश्यकता के बारे में दूरसंचार विभाग को सूचित करें।
5. राजभाषा अधिनियम, 1963 यथा संशोधित (1967) के प्रावधानों का अनुपालन सुनिश्चित करना-टेलीफोन निर्देशिकाओं को हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित करने की अनिवार्यता
दूरसंचार विभाग द्वारा प्रकाशित की जाने वाली टेलीफोन निर्देशिकाओं के हिंदी संस्करण भी अनिवार्य रूप से साथ ही साथ प्रकाशित किए जाएं। विभिन्न नगरों के दूरसंचार कार्यालय "क" और "ख" क्षेत्रों में टेलीफोन निर्देशिकाओं के हिंदी संस्करण अंग्रेजी संस्करण से पहले जारी करें। एक कूपन जैसा कि अब लगाया जाता है वैसा ही अलग रंग के कागज में हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में तैयार करके निर्देशिका के दोनों रूपों में लगाया जाए, जिसमें यह पूछा जाए कि उपभोक्ता अगली टेलीफोन डाइरेक्टरी हिंदी में अथवा अंग्रेजी में प्राप्त करना चाहेगा।
"क" और "ख" क्षेत्रों में आरम्भ से ही दोनों संस्करण समान संख्या में अथवा हिंदी-अंग्रेजी 40 : 60 के अनुपात में प्रकाशित किए जाएं और "ग" क्षेत्र में प्रारम्भ में हिंदी-अंग्रेजी 30:70 के अनुपात में प्रकाशित किए जाएं।
(और बाद में आवश्यकता के अनुसार "ग" क्षेत्र में भी दोनों संस्करणों की संख्या समान की जा सकती है।)
6. सरकारी प्रकाशनों आदि का द्विभाषी रूप में प्रकाशन
मंत्रालय/विभाग/कार्यालय/संगठन आदि कोई भी प्रकाशन केवल अंग्रेजी में न निकाले और न ही हिंदी प्रतियां अंग्रेजी रूप की मुद्रण संख्या से कम हो।
(का.ज्ञा.स. 20034/53/92-रा.भा. (अ.वि.) दिनांक 17.7.92)



हिन्दी दिवस 14.9.98 के शुभ अवसर पर कार्यालयीय हिन्दी पत्रिका 'चेतना' के दसवें अंक का लोकार्पण करते हुए मुख्य अतिथि श्री आलोक धन्वा, सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि ।



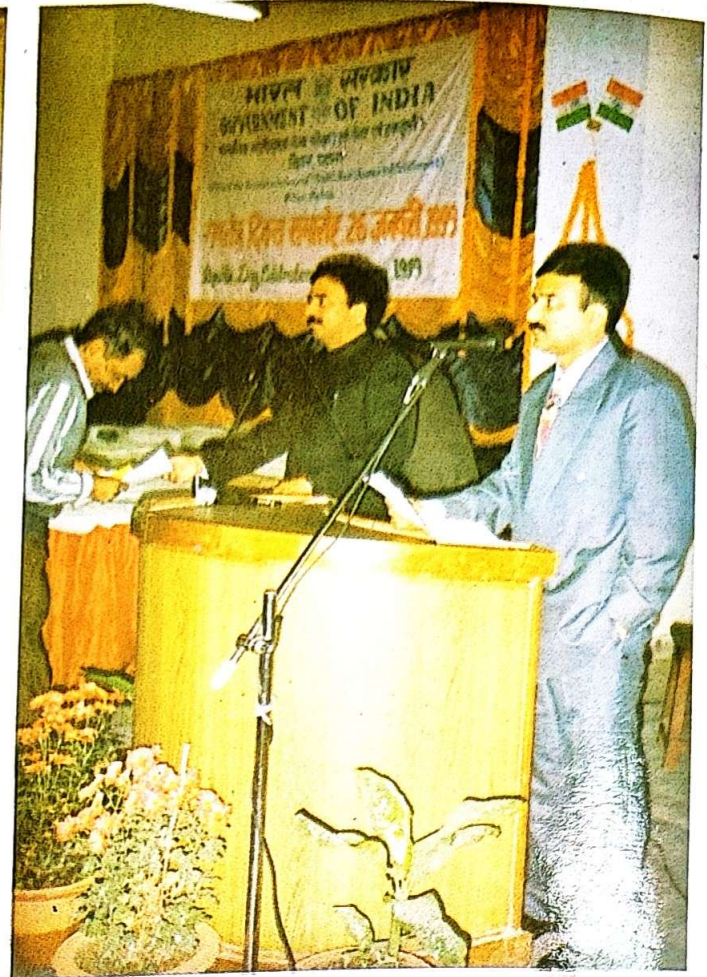
हिन्दी दिवस 14 सितम्बर, 1998 के पुनीत अवसर पर भावोद्गार व्यक्त करते हुए श्री ललन प्रसाद श्रीवास्तव, वरिष्ठ लेखा अधिकारी (हिन्दी), बिहार, पटना ।



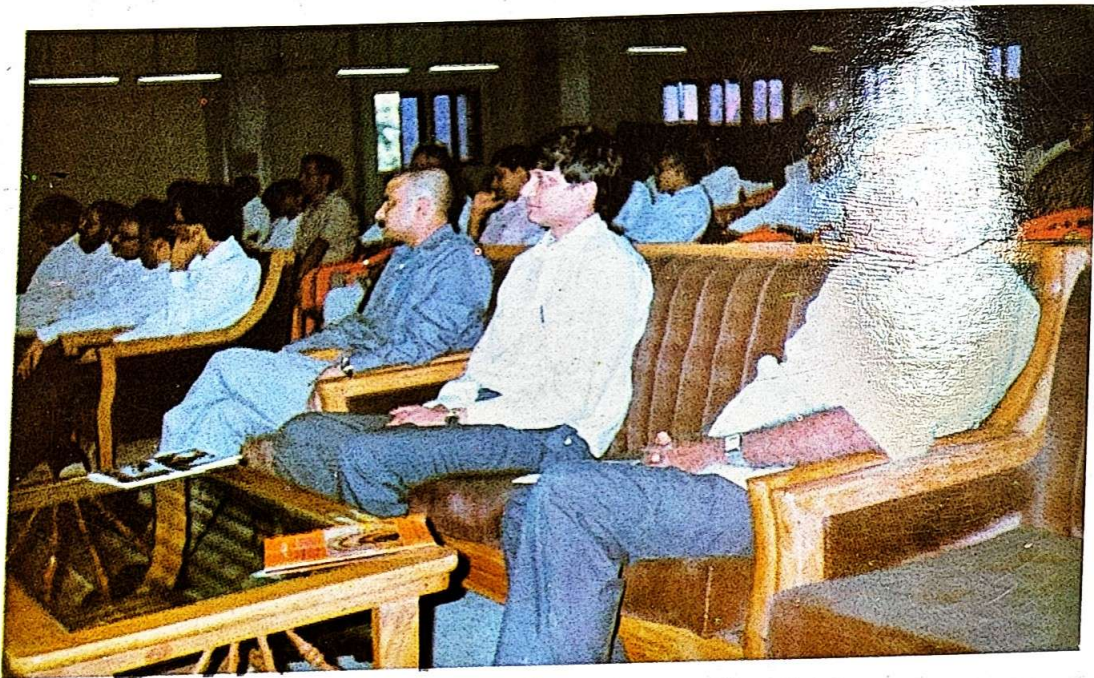
हिन्दी पखवाड़ा समारोह, 1998 के दौरान गीत-नाद कार्यक्रम में भाग लेते हुए कार्यालय के कर्मचारीवृन्द



26 जनवरी, 1999 के गणतंत्र दिवस समारोह में कार्यालय के अधिकारियों / कर्मचारियों को सम्बोधित करते हुए श्री अरूण कुमार सिंह, महालेखाकार (ले. एवं ह.)-II, बिहार, पटना।



26 जनवरी, 1999 के गणतंत्र दिवस के शुभ अवसर पर कार्यालय के अधिकारियों / कर्मचारियों को पुरस्कार प्रदान करते हुए श्री नन्दलाल, महालेखाकार (लेखा परीक्षा)-I, बिहार, पटना।



दिनांक 14.9.98 को हिन्दी दिवस समारोह का आनन्द लेते हुए कार्यालय के अधिकारी एवं कर्मचारी वृन्द।